॥ वन्दे जिनवरम् ॥

संगीत

महासती चन्दनबाला

सचित्र

कविरत्न

श्री चन्दन मुनि जी

पूज्य जीवनराम
जैन पुस्तक प्रकाशन समिति
गीदड़वाहा मण्डी (पंजाब)

पूज्य जीवनराम जैन पुष्प-माला का पुष्प नं० ३०

पुस्तक :
संगीत महासती चन्दनवाला

लेखक :
कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी महाराज

सम्पादक :
श्री नेमीचन्द जी पूगलिया

मुख पृष्ठ एवं रेखाचित्रकार
श्री बृजलाल जी जालन्धर शहर

प्रथम संस्करण
विक्रमी सम्वत् २०२९ भाद्रपद

मूल्य :
अर्द्धमूल्य—ढाई रुपए

प्रकाशक :
पूज्य जीवनराम
जैन पुस्तक प्रकाशन समिति
गीदड़बाहा मण्डी (पंजाब)

मुद्रक :
आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस,
३५०, इण्डस्ट्रियल एरिया-ए, लुधियाना।

महासती चन्दनबाला :

मेरी दृष्टि में

मुनिराज श्री फूलचन्द जी 'श्रमण'

जिन विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन में समता, सहिष्णुता, सदाचार, सत्य, शान्ति, एकनिष्ठा एवं ज्ञान इत्यादि गुण हों वे महामानव होते हैं। महामानव भी दो रूपों में हमारे समक्ष आते हैं, पुरुष के रूप में और स्त्री के रूप में। सभी महामानव भगवद्-पदवी प्राप्त करने के सर्वथा योग्य होने के कारण सर्वदा श्रद्धास्पद होते हैं, भक्तजनों के लिये उन का नाम केवल स्मरणीय ही नहीं, आदरणीय भी होता है, उनके आदर्श जीवन से निकली हुई प्रकाश-किरणें युग-युगान्तरों तक भटकी हुई मानवता का पथ-प्रदर्शित करती रहती हैं।

वसुमती अर्थात् चन्दनबाला भी हमारे लिये उतनी ही श्रद्धेय हैं जितने कि इन्द्रभूति गौतम स्वामी। वसुमती पृथ्वी का नाम है और महासती श्री चन्दनबाला का भी जन्मनाम 'वसुमती' ही था। पृथिवी में सात विशेषताएं होती हैं, उन विशेषताओं से सम्पन्न तपस्विनी नारी को भी वसुमती कहा जा सकता है। चम्पा-नरेश दधिवाहन की सुपुत्री महारानी धारणी की आत्मजा को प्रकृति देवी ने माता-पिता से वसुमती नाम दिलवाया, मानो प्रकृति को ज्ञात था कि इसने अपने जीवन में पृथिवी की सातों विशेषताओं को धारण करना है। वसुमती ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी

त्यों-त्यों उस के अव्यक्त गुण एवं विशेषताएं स्वतः ही व्यक्त होने लगीं।

१. वसुमती का पहला गुण—जैसे पृथिवी शीत, ताप, छेदन और भेदन आदि सब कुछ सहती है और इसी कारण वह सर्वसहा कहलाती है, वैसे ही चन्दनबाला ने भी अपने शुद्ध लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए अनेकों बार अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों को समभाव से सहन किया था, वह विवेक के नेत्र सदैव खोले रखती थी, वह अपने लक्ष्य से क्षण भर के लिये भी कभी विचलित नहीं हुई अतः वसुमती में सर्वसहा का विशेष गुण विद्यमान था, अतः वह सच्चे अर्थों में 'वसुमती' थी।

२. वसुमती का दूसरा गुण—वसु का अर्थ है धन, उसे धारण करनेवाली या उससे सम्पन्न पृथिवी को वसुमती या वसुन्धरा कहा जाता है। राजकन्या वसुमती भी गम्भीर विचार-शील ज्ञानदर्शन आदि विविध सम्पत्तियों से सम्पन्न थी, अतः इस रूप में भी वह वसुमती ही थी।

३. वसुमती का तीसरा गुण—जैसे ऊर्वरा भूमि धान्य के द्वारा विश्व का सब तरह से भरण-पोषण करती है, वैसे ही वसुमती भी लोक-कल्याण के लिये मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विचारों के द्वारा भरणपोषण एवं रक्षण करती हुई जीवन-यापन करती थी, इस रूप में भी वह 'वसुमती' ही थी।

४. वसुमती का चौथा गुण—पृथिवी में जैसे न किसी पर मोह है और न ममत्व है, वह न किसी के साथ आई और न किसी के साथ जाएगी, वैसे ही वसुमती मोह-ममत्व से अलग-थलग रहती हुई अपने साधना-मार्ग पर बढ़ती रही, बढ़ती क्यों न? 'वसुमती' जो थी।

५. वसुमती का पांचवां गुण—पृथिवी जैसे घोरातिघोर कष्ट पडने पर भी दुखित होकर किसी के आगे रोती नहीं, पुकार नहीं करती, वैसे ही वसुमती भी धर्ममार्ग पर अग्रसर होती हुई अपने सुपथ पर अडिग रही, आत्मनिश्चय पर अटल रहकर दीनता से कभी रोई नहीं उसने किसी देवी-देवता की सहायता नहीं मांगी, किसी भी नरेश या पंचायत के आगे दुखों से मुक्त होने के लिये कभी उसने प्रार्थना नहीं की, क्योंकि उसे यह विश्वास एवं निश्चय था कि धर्म के बिना जीव का अन्य कोई सहायक नहीं, जिनको धर्म पर श्रद्धा नहीं होती वही धर्म को छोड़ कर इधर-उधर भटकते हैं।

६. वसुमती का छटा गुण—भूमि जैसे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के लिये आधारभूत है, पापिष्ठ और धर्मात्मा, दुर्जन और सज्जन, आर्य और अनार्य, ज्ञानी और अज्ञानी सब को समान रूप से आश्रय देती है, वैसे ही वसुमती भी शत्रु और मित्र उपकारी और अपकारी स्तुतिकार और निन्दक सब का समान रूप से कल्याण चाहती थी। समता उसके जीवन में सखी की तरह सदा-सर्वदा रहती थी, अतः वह 'वसुमती' नाम के योग्य थी।

७. वसुमती का सातवां गुण—पृथिवी जैसे अशुद्ध को भी शुद्ध करती है। 'पुढवीसोए' मिट्टी से शुद्धि होती है, प्राकृतिक चिकित्सा में पृथ्वी अनेक रोगों का अपहरण करती है, प्राणियों की सब प्रकार की आवश्यकताएं पृथिवी पूरी करती है, वैसे ही वसुमती भी विकारों से अशुद्ध हुए को शुद्ध करती थी और भव-रोगों को भी मिटाती थी। धरती जैसे अपने आप में महान है वैसे ही वसुमती भी अपूर्ण से पूर्ण होकर महान हो गई, अतः

वसुमती ने अपना नाम अपने गुणों से तथा विशेषताओं से चरितार्थ कर दिया।

वसुमती का दूसरा नाम चन्दनबाला है। चन्दन के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे कि मलयाचल पर उत्पन्न होनेवाला सर्वोत्तम वृक्ष जिसका आमूल-चूल सर्वाङ्ग सौन्दर्य एवं सौरभ्यपूर्ण हुआ करता है और जिसके प्रभाव से अन्य वृक्ष भी चन्दनमय बन जाते हैं। चन्दन की भी अनेक जातियां हैं। सर्वोत्तम चन्दन का स्वर्ण-मुद्राओं के साथ तोल एवं लेन-देन का व्यवहार हुआ करता था किसी स्वर्णिम युग में। उसमें शीतलता एवं सुगन्ध के अतिरिक्त सैंकड़ों विशेषताएं हुआ करती हैं। आर्या चन्दना भी अनन्त गुणों से सम्पन्न थीं, भगवान महावीर के शासन में छत्तीस हजार साध्वियों में प्रमुख साध्वी बनकर वह और भी महान् बन गई। भगवान महावीर के होते हुए ही आर्या चन्दना ने कैवल्य प्राप्त किया।

चतुर्विध श्रीसंघ आज भी उनके प्रति पूर्ण निष्ठा रखता है। उनकी मौन स्तुति तो सभी करते हैं, परन्तु वाणी के द्वारा किसी की स्तुति लेखक, प्रवक्ता और कवि ही कर सकते हैं। महा-मानवों के चरित गद्य और पद्यों दोनों में उपलब्ध है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी के द्वारा रचित चन्दनबाला का जीवन-वृत्त गद्य और पद्य दोनों रूपों में देखा गया है। पद्य में ताराचन्द लूणिया के द्वारा रचित लावनीछन्द की तर्ज में भी देखने को मिला। गद्य में चन्दनबाला के चरित अनेकों ही उपलब्ध होते हैं।

संगीत महासती चन्दनबाला का जीवन-वृत्त अभी-अभी आप के कर कमलों में प्रस्तुत है। इसके रचयिता पंजाब प्रान्त के कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज हैं। स्तुत्या चन्दनबाला है और स्तुतिकार श्री चन्दन मुनि हैं।

किसी की जड में सुगन्धि होती है, जैसे अगर तगर गूगल धूप आदि। किसी के फूल में सुगन्धि होती है, जैसे गुलाब चमेली केसर आदि। किसी के फलों में सुगन्धि होती है, जैसे इलायची आदि। किसी के बीज में सुगन्धि होती है, जैसे सौंफ आदि। किसी के पत्तों में सुगन्धि होती है, जैसे तुलसी आदि। चन्दन ही एक ऐसा वृक्ष है जिसका कण-कण सुगन्धित होता है, किन्तु कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी भी चन्दन हैं, उनका रोम-रोम संयम-सौरभ से सुरभित है, अतः उनके काव्य में भी संयम-सुरभि का होना स्वाभाविक था और वह है ही।

छप्पयछंद के एक भेद को चन्दन कहा जाता है और चन्दन नाम का एक विशिष्ट रत्न भी होता है। रत्नों के मुख्य भेद सोलह हैं। उनमें एक भेद चन्दन भी है। इसीलिये कवि-रत्न चन्दन मुनि नाम उपयुक्त ही है।

आपकी कविता रसपूर्ण होती है, आपका हृदय गुणग्राही है, माधुर्य-सम्पन्न है। यह बड़े हर्ष की बात है। आर्या चन्दना का जीवन-वृत्त लिखनेवाले मुनि चन्दन हैं। दीक्षा के बाद आर्या चन्दना का नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ है, क्योंकि वह भगवान महावीर की शरण में जो पहुंच गई थी। श्री चन्दन मुनि जी भी दीक्षा के अनन्तर अधिक-प्रसिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे, क्योंकि वे भी तो भगवान महावीर की शरण में आगए हैं। इस साम्य के कारण भी श्री चन्दन मुनि जी महाराज जी की 'महासती चन्दन-बाला' विशेष महत्वपूर्ण है।

महासती चन्दनबाला
एक समीक्षात्मक अध्ययन

उदात्तचेता साहित्यकार साहित्य का सृजन करता है, अपनी कलात्मक भावाभिव्यक्ति के द्वारा आत्म-आनन्द की प्राप्ति के लिये और साथ ही उसका यह लक्ष्य भी रहता है कि वह अपनी आनन्दमयी उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा लोक-मानस का परिष्कार करे। श्रद्धेय श्री चन्दन मुनि जी महाराज की परिष्कृत काव्यचेतना ने जितनी भी रचनाएं आज तक प्रस्तुत की हैं उनका लक्ष्य यही रहा है। प्रस्तुत रचना 'महासती चन्दन-बाला' भी इसी लक्ष्य की पूर्ति का एक महान प्रयास है।

काव्य के दो रूप हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रस्तुत रचना एक सरस प्रबन्ध काव्य है। इस रचना में मुनिराज की दिव्य प्रतिभा ने महासती चन्दनबाला के जीवन-उद्यान में से चुने हुए घटना-पुष्पों को कल्पना के सूत्र में पिरोकर ऐसी सुन्दर घटना-माला प्रस्तुत की है जो साहित्यिक दृष्टि से प्रबन्धात्मक महाकाव्य है और उपयोगिता की दृष्टि से इस घटना-माला को कण्ठ में धारण करनेवाला पाठक निश्चय ही जीवन के लिये दिव्य आलोक प्राप्त कर सकेगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

यह ठीक है कि महाकाव्य में सर्ग-संख्या नौ से अधिक होनी चाहिए, परन्तु प्रस्तुत आख्यान पांच चरणों में ही पूर्ण हो गया है, परन्तु तुलसी का सात काण्डों से युक्त रामचरित मानस भी तो महाकाव्य माना ही जाता है, फिर चरणों का विन्यास इसके महाकाव्यत्व में बाधक नहीं हो सकता है, क्योंकि

महाकाव्य के लिये अन्य अपेक्षित सभी गुण इसमें विद्यमान हैं, जैसे—इसकी नायिका चन्दनबाला श्रेष्ठ कुलोद्भवा सम्यक् चारित्र की अधिष्ठात्री लोकमङ्गलकारणी देवी है। वीर एवं शान्त रसों की प्रधानता है, सामाजिक चित्रण की रेखाएं भी स्पष्ट हैं। प्रारम्भ में मङ्गलाचरण है, आदि।

कथानक

इसकी कथावस्तु प्रख्यात है। प्रख्यात कथावस्तु के दो रूप होते हैं—जहां सम्वत् सन् आदि की सीमाएं निश्चित एवं निर्धारित तथ्यों पर अवस्थित होती हैं उसे ऐतिहासिक कथानक कहा जाता है और जिस कथानक में जीवन के सत्य शिवं एवं सुन्दरम् होकर व्यक्त होते हैं, परन्तु कालनिर्धारण की मर्यादाओं को उपेक्षित कर दिया जाता है उस कथानक को पौराणिक कहा जाता है। यद्यपि कवि-लेखनी ने ऐतिहासिक पथ पर जाने का प्रयास तो नहीं किया, फिर भी भगवान् महावीर, शतानीक, दधि-वाहन, महासती चन्दनबाला और धारिणी एवं मृगावती आदि पात्र ऐतिहासिक हैं, उनकी जीवनरेखाएं ऐतिहासिक हैं, कौशाम्बी चम्पा (आधुनिक चम्पारन) आदि स्थान भी ऐतिहासिक हैं, अतः यह कथानक ऐतिहासिक है, परन्तु कविवर चन्दन मुनि जी की तपस्विनी लेखिनी ने स्थान-स्थान पर इतिहास की रेखाओं में कल्पना के ऐसे सुन्दर रंग भर दिए हैं जिनसे इतिहास अपने भव्य रूप में साकार हो उठा है।

महासती चन्दनबाला

महासती चन्दनबाला का पावन-चरित आगमों में कहीं उपलब्ध नहीं होता है, केवल स्थान-स्थान पर उसका उल्लेख अवश्य हुआ है। अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र के आठवें वर्ग में आर्या

कालीदेवी आर्या चन्दना के पास जाकर उनसे 'रत्नावली' रूप तप की आज्ञा मांगती हैं।[1] इसी प्रकार आवश्यक सूत्र की गाथा ५२०-२१ में भी आर्या चन्दना का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] वहां उसके पूर्वनाम वसुमती का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी नामोल्लेख मात्र ही है।

महासती चन्दनबाला का विस्तृत आख्यान त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित के दसवें पर्व के चौथे वर्ग में विस्तृत रूप से विद्यमान है, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्यमान चन्दनबाला के चरित से उसमें पर्याप्त भिन्नता है। जैसे कि निम्नलिखित कथांश यहां नहीं हैं—(१) कौशाम्बी में भगवान महावीर अभिग्रहपूर्ति के लिये शतानीक के मन्त्री सुगुप्त के घर जाते हैं और उनकी पत्नी नन्दा भगवान द्वारा आहार ग्रहण न करने पर दुखी होती है और सुगुप्त से अभिग्रह जानने का आग्रह करती है।

(२) यहीं पर विजया नामक महारानी मृगावती की वेत्रिणी आती है और वहां जाकर महारानी मृगावती को भगवान के अभिग्रह और आहार ग्रहण न करने की सूचना देती है। तब मृगावती अत्यन्त दुखित होती है और महाराज शतानीक से अभि-ग्रह जानने का आग्रह करती है।

(३) शतानीक एक उपाध्याय जी को बुलाकर भगवान का अभिग्रह जानना चाहते हैं, परन्तु वे यही कहते हैं कि ऐसा अभिग्रह विशिष्ट ज्ञानी ही बतला सकते हैं।

इसी प्रकार कुछ कथानक ऐसे हैं जो त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-

---

१. तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागया। अन्तकृद्दशाङ्ग० ८।१

२. तच्चावाई चंपा दहिवाहण वसुमई अ बीअ नामा।

चरित में उपलब्ध नहीं होते हैं जैसे कि—

(१) चन्दनबाला को बाजार में खरीदनेवाली अनंगसेना नामक नगर-नायिका का उल्लेख वहां प्राप्त नहीं होता और न ही वहां वानर-सेना द्वारा चन्दनबाला की सुरक्षा की चर्चा की गई है।

(२) महारानी धारिणी और वसुमती का अपहरण करने वाले सैनिक को रथी नहीं 'औष्ट्रिक' कहा गया है, जो सम्भवत: उष्ट्र-सेना का अधिपति हो सकता है।

(३) रानी धारिणी द्वारा जीभ खींच कर मरने का वृत्तान्त भी वहां नहीं है। वहां तो औष्ट्रिक ने सब सैनिकों के समक्ष यह कहा है कि "यह प्रौढ़ा रूपवती मेरी पत्नी बनेगी और इसकी लड़की को लेजाकर कौशाम्बी के चौराहे पर बेच दूंगा"।[1] यह सुनते ही रानी का दिल फट गया और उसके प्राण नीड़ से पक्षी के समान उड़ गए।

(४) वहां भगवान महावीर द्वारा कृत अभिग्रह के केवल १० अङ्ग बताए गए हैं १३ नहीं।[2]

---

१. प्रौढ़ा रूपवती चेयं मम भार्या भविष्यति।
विक्रेष्ये कन्यकां त्वेतां नीत्वा पुर्याञ्चतुष्पथे। (१०।४।५२०)

२. अयोनिगडबद्धाङ्घ्रिः मुण्डिताऽनशिता सती।
रुदती मन्युना राजकन्यापि प्रेष्यतां गता।
देहल्यन्तः स्थितैकाङ्घ्रिः बहिः क्षिप्ता परांघ्रिका।
गृहात्प्रतिनिवृत्तेषु सर्वभिक्षाचरेषु च।
यदि मे शूर्पकोणेन कुल्माषान्संप्रदास्यति,
चिरेणापि तदैवाहं पारयिष्यामि नान्यथा।

(५) मूला ने चन्दनबाला को एक कमरे में बन्द किया था भोयरे में नहीं।

(६) धनावह ने चन्दना के बाल क्रीड़ायष्टि से उठाए थे हाथ से नहीं।

(७) मूला ने नौकरों को निकाला नहीं।

(८) भगवान को पारणा कराने पर जो देवदुन्दुभियां बजीं उनको सुन कर वहां महाराज शतानीक, महारानी मृगावती, मन्त्री सुगुप्त और उनकी पत्नी नन्दा भी आई थी। उनके साथ ही दधिवाहन का सम्पुल नाम का कञ्चुकी भी आया था, उसीने सब को यह बताया कि यह कन्या तो महाराज दधिवाहन की पुत्री वसुमती है।

भगवान के पारणे तक का कथानक ही वहां उपलब्ध होता है आगे का नहीं।

ठीक यही कथानक आवश्यक निर्युक्ति में मलयगिरि जी ने दिया है। उनके कथानक में तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष के कथानक में कोई अन्तर नहीं है।

श्री भैंरोदान सेठिया ने अपनी पुस्तक श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह (पंचम भाग में) में प्रायः वही कथानक दिया है जो प्रस्तुत काव्य का कथानक है। और आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज का 'सती 'चन्दनबाला' भी इसी कथानक से मिलता जुलता कथानक है। श्रद्धेय चन्दन मुनि जी महाराज ने इस कथानक को भी विशेष मार्मिक भाव प्रदान किए हैं।

कवि का यही वैशिष्ट्य माना जाता है कि वह अपने पात्रों के साथ ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेता है, जिससे उनके हृदय का कोई भी भाव उससे छिपा नहीं रह जाता। युग-

युगान्तरों के अन्तर को चीर कर वह उनकी बोली में बोलने लग जाया करता है। श्री चन्दन मुनि जी महाराज में भी यही तो वैशिष्ट्य है, उन्होंने प्रत्येक पात्र के अन्तर को अच्छी प्रकार से टटोला है और उनसे वह कहलवाया है जो कहलवाने के योग्य है और जो वह कहना चाहता है। यही कारण है कि घटना-सूत्र के साथ ही साथ भाव-सूत्र का विस्तार अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। ऐसे भाव-सूत्र का जिसने प्रत्येक घटना पर मुलम्मा चढ़ा दिया है, कथानक के प्रत्येक अंग को सुशृंखलित करने के साथ-साथ उसे रोचक बना दिया है। विशेषता यह है कि कुछ पंक्तियां पढ़ने के अनन्तर भाव-सौन्दर्य से आबद्ध-मानस पाठक से आगे की पंक्तियां पढ़े बिना रहा नहीं जा सकता है।

पात्र

प्रस्तुत काव्य में पात्र संख्या सीमित है जो काव्य का विशिष्ट गुण माना जाता है—प्रधान पात्र हैं–वसुमती (चन्दनबाला) चम्पानरेश दधिवाहन, उनकी पत्नी धारिणी, कौशाम्बी नरेश शतानीक, उनकी पत्नी मृगावती, सेठ धनावह, उसकी पत्नी मूला, रथी, उसकी पत्नी और नगर नायिका। इनमें से सभी चरित्र चन्दनबाला के चारित्रिक विकास में एवं उसके आदर्शों की अभिव्यक्ति में सहायक रहे हैं। कोई भी पात्र स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखनेवाला नहीं है, मानो वे सभी चन्दनबाला के चरित्र-चक्र के अरे हैं।

चन्दनबाला का चरित्र तो दूध से धुला हुआ है, वह तो निष्कलङ्क चन्द्र के तुल्य है, उसी की अभिव्यक्ति ही तो लेखक को इष्ट है। शेष पात्रों में मानवीय दुर्बलताएं और सबलताएं दोनों देखी जा सकती हैं, साथ ही मुनिराज की आदर्शोन्मुखी लेखनी ने अध्यात्म

वल से पात्रों के मानसिक परिवर्तन की सुन्दर शैली को अपनाया है। रथी में सौन्दर्याकर्षण मानसिक दुर्वलता है, जो अन्त में परिवर्तित हो जाती है। वह पत्नी से दब कर आखिर कन्या को वेच देता है, यही तो उसकी यथार्थतः मानवीय दुर्वलता है।

सेठ धनावह भी मूला के नियन्त्रण में असमर्थ-सा जान पड़ता है, परन्तु चन्दना को पुत्री बनाकर उसने अपने आदर्श के कुन्दन को यथार्थ की अग्नि में तपा कर भास्वर बना दिया है।

नगर-नायिका के चरित्र की अभिव्यक्ति अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है, उसका मनःपरिवर्तन भी स्वाभाविक है।

वातावरण की स्वाभाविकता

काव्यकार अपने युग में बैठकर भी उस युग का चित्रण करता है, वह जिस युग के पात्रों के जीवन की अभिव्यक्ति कर रहा होता है। इस दृष्टि से मुनीश्वर-शिरोमणि श्री चन्दन मुनि जी एक चतुर-चितेरे हैं, उन्होंने तात्कालिक प्रथाओं का चित्रण बड़ी सजगता से किया है और घटनाओं को अस्वाभाविकता से बचाने का यत्न किया है।

कला-पक्ष

श्री चन्दन मुनि जी महाराज भाषा के धनी हैं, उनका शब्द-भण्डार वह अक्षय कोष है जिसमें नित्य नए-नए शब्द-रत्नों की सृष्टि होती रहती है। भाषा में काठिन्य नहीं, पहाड़ी झरने के उद्दाम जल-प्रवाह-सा उसमें प्रवाह है। जैसे—

मुख से निकली धार रक्त की, तन से निकल गए हैं प्राण।
गिरा शरीर धरा पर इसको, 'चन्दन' कहते हैं वलिदान॥

एक बात अवश्य है, मुनि जी भाषा में कबीर के समकक्ष

माने जा सकते हैं, क्योंकि मुनि जी कबीर की तरह शब्द को जाति न देख कर उसकी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य देखते हैं, अतः वे कबीर के समान ही नानाविध शब्दों का प्रयोग करते हैं। एक तरफ तो वे जघन्य, परिहर्तव्य, आराध्य जैसे संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं, दूसरी ओर गौर, हराम, साफ़ जैसे उर्दू शब्दों के प्रयोग में भी उन्हें हिचक नहीं है। सौदा, ओढ़नी, दैया जैसी लौकिक शब्दावली भी उनकी भाषा का शृंगार करती है। विशेषता यह है कि भाषा पात्रानुकूल रहती है। एक व्याकुल-सी समान्य नारी की भाषा देखिए—

हाय! हाय री! दैया! मैया!, हाय! हाय! मेरे भगवान।

दूसरी ओर चन्दनबाला की गम्भीर वाणी का गाम्भीर्य है—

चिन्तन मनन तथा अनुशीलन, मुझको कर लेना है आज।

शतानीक की उदण्ड वाणी का भी एक उदाहरण देख लें।

न्याय पूछने का नहीं, हे नरपति! अब वक्त।
मेरी सेना मांगती, चम्पापुर का रक्त।
राज्य बढ़ाना न्याय है, बाकी सब अन्याय।
युद्ध सिवा कोई नहीं, इसका अन्य उपाय।

श्री चन्दन मुनि जी सीधी-सादी बात कहने के विश्वासी हैं, अतः वे कविता-कामिनी को अलंकृत करने के प्रयास से प्रायः दूर ही रहते हैं, परन्तु उनकी कविता स्वयं अलंकृत होती रहती है। कितनी सुन्दर है यमक की छटा—

इस घर में उस घर में अन्तर वही जानता है।
अन्तर में अन्तर हो जिसके, अन्तर वही मानता है।

उपमा का अपना ही सौन्दर्य है—

पक्षी उड़ जाते हैं, जैसे सुनकर गोली की आवाज़।
भाग गई है वानर सेना, लगा लीजिए अब अन्दाज़।

कवि-प्रतिभा ने घिसे-पिटे उपमानों का प्रयोग नहीं किया नई कविता के लिये उपमान भी नए ही लाए गए हैं। जैसे—

सहसा आई सामने, रचा भयंकर रूप।
'चन्दन' ज्यों आसोज की, बड़ी कड़ी हो धूप।

× × × ×

पुत्री पर आक्षेप धमकियां, सुन कर रथिक हो गया क्रुद्ध।
बांध टूट जाने पर कैसे, रह सकता है जल अवरुद्ध।

कविवर श्री चन्दन मुनि जी को दोहा और लावनी छन्द ऐसे ही प्रिय हैं जैसे तुलसी को दोहा और चौपाई। प्रस्तुत काव्य में इन्हीं छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है।

मैं पहले ही निर्देश कर चुका हूं कि चन्दन मुनि जी महाराज का लक्ष्य लोक-मानस का परिष्कार ही है और इस परिष्कार के लिये उन्होंने जीवन के हर पहलू पर ध्यान दिया है। कुछ निर्देश किये बिना हृदय रह नहीं पा रहा—

सदा धर्म के लिये मिटें जो, मर कर बनते दिव्य अमर।
हमें अहिंसात्मक बतलाया, ऋषि-मुनियों ने यही समर।

× × × ×

दुनिया के इतिहास में, लिखे गए जो पाप।
देखो उन पर है लगी, महा लोभ की छाप।

× × × ×

शील पालने के लिये, सहने होते कष्ट।
कायिक वाचिक मानसिक, 'चन्दन' कहता स्पष्ट।

× × × ×

भला इसी में है मानव का, भला मान स्वीकार करे।
कितने ही दुख आएं दुख का, 'चन्दन' नहीं विचार करे।

मैं अन्त में इतना ही कहूंगा कि 'महासती चन्दनबाला' भाव भाषा एवं कला की दृष्टि से अपने आप में एक पूर्ण एवं सुन्दर रचना है, इसकी लयात्मक गेयात्मकता में गेयत्व का अनुपम रस है, इसका पठन-पाठन लोक-मंगलकारी होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

अन्त में मैं शासनेश प्रभु के चरणों में यह प्रार्थना भी करूंगा कि श्रद्धेय श्री चन्दनमुनि जी की लेखनी समाज के परिष्कार के लिये सदा प्रस्तुत रहे और जैन-साहित्य-निधि को सम्पन्न बनाती रहे। नव-नव काव्यों की सृष्टि के लिये सदा समुद्यत रहे। इन्हीं प्रार्थना-स्वरों के साथ मैं मुनिराज की तपस्विनी लेखनी के समक्ष नतमस्तक हूँ।

तिलकधर शास्त्री

सम्पादक-'आत्म रश्मि'

प्रकाशकीय

जैनागमों को यदि मैं देदीप्यमान सुमेरु कहूँ तो उनमें से प्रवाहित होने वाली कथाओं को मैं पीयूषवाहिनी सरिताएं कह सकता हूं। आरम्भ में ये सरिताए लघु ही होती हैं, परन्तु कथाकारों के भावस्रोतों का सहयोग पाकर वे कथासरिताएं विराट् हो जाती हैं और फिर सामाजिक भूमि को भाव-सलिल से सींच-सींच कर चारित्र की कृषि को झंपा झूलता रूप देकर मानव जाति के मानस-सिन्धु में समा जाती है। इस प्रकार कथा-साहित्य समाज के निर्माण में अपना जो योग देता आया है वह सर्व-विदित है।

कहानी को साहित्य की नानी कहा जाता है, और कहानी अपने सर्वप्रिय रूप में अनन्तकाल से चली आ रही है, परन्तु जब कहानी जीवन-निर्माण के तत्त्वों को धारण कर लेती है तो उसे कथा कहा जाता है। कथाएं भी कथाकार कहते ही आए हैं परन्तु राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्ति सब के निर्माण में एक साथ योगदान देने वाली कथाएं कहनेवाले विरले ही मिलते हैं। उन विरलों में मूर्धन्य हैं कविचक्रचूड़ामणि भाव-सिन्धु की अतल गहराइयों के वेत्ता पीयूषप्रवाहिनी भाषा के धनी श्री चन्दनमुनि जी महाराज जिनकी अनथक लेखनी अनेक संगीतात्मक कथात्मक रचनाओं का निर्माण करती चली आ रही है और हमें उनके प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

'महासती चन्दनबाला' यह जैन-कथा-साहित्य की अत्यन्त मार्मिक निधि है। इसे गद्य मे अनेक बार लिखा जा चुका है,

इसके पद्यात्मक रूप भी प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु श्री चन्दन मुनि जी महाराज की प्रस्तुत रचना में कुछ वैशिष्ट्य है—इसके पात्रों की वाणी में युगवाणी है, इसकी कर्म-प्रेरणा में युग की मांग की पूर्णता है, इसकी चिन्तन-धारा में युग-समस्याओं के समाधान हैं। लेखक ने अतीत की भूमि में वर्तमान की समस्याओं के बीज बो कर उनसे भविष्य-निर्माण के फल प्राप्त किए हैं। पूर्णिमा के प्रकाश से अमृत भी झरता है, शीतलता भी बरसती है और सौन्दर्य भी टपकता है। चन्दनबाला के चरित्र-चन्द्र से भी जीवनामृत मिलेगा, हृदय को शान्ति मिलेगी और मानसिक सौन्दर्य निखर उठेगा। यह मेरा विश्वास है और मेरे इसी विश्वास ने इस रचना को प्रकाशनीय रूप दिया है।

आभूषण कीमती होते हैं, उन में रत्न भी जड़ दिए जाते हैं, परन्तु उन पर जब तक पालिश नहीं चढ़ती तब तक उनका वास्तविक सौन्दर्य प्रकट नहीं होता है। प्रकाशन में सम्पादन का भी वही स्थान है जो आभूषणों में पालिश का है। यह सम्पादन रूप पालिश करने के लिये हमें सूक्ष्मलिपि-कलाविशारद श्री नेमीचन्द जी पूगलिया ने जो प्रशंसनीय सहयोग दिया है उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

हम उन बन्धुओं के लिये भी मंगलकामनाएं करते हैं जिनके आर्थिक सहयोग से पुस्तक प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो सका है।

हम 'महासती चन्दनबाला' अपने पाठकों को सादर समर्पित करते हुए आशा रखते हैं कि पाठक इसके पठन एवं गान से चरित्र-निर्माण की पुनीत प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

चरणदास जैन मन्त्री

पूज्य जीवनराम जैन पुस्तक प्रकाशक समिति

गीदड़बाहा मण्डी, पंजाब

हम आभारी हैं

पूज्य श्री जीवनराम जैन पुस्तक प्रकाशक समिति (गीदड़वाहा मण्डी) अपने उन धर्म-प्रेमी दानशील वन्धुओं की आभारी है जिनका सराहनीय सहयोग प्रकाशन को रूप दे रहा है।

१. श्री हेमराम कमल किशोर कांसल, वरनाला (पंजाब)
२. श्रीमती सरस्वतीदेवी धर्मपत्नी ला० घमण्डीलाल गोयल वरनाला (पंजाब)
३. ला० हरवंशलाल धर्मचन्द सिंगला, वरनाला (पंजाब)
४. वैशाखीराम पवनकुमार जैन अग्रवाल, वरनाला (पंजाब)
५. वैद्य तेजपाल जीवनकुमार जैन भाईरूपा (भटिण्डा)
६. श्री मनोहरलाल राजकुमार जैन गीदड़वाहा मंडी
७. ला० फूलचन्द धर्मपाल जैन गीदड़वाहा मण्डी
८. श्रीमती विद्यावती धर्मपत्नी लाला हाकम राय जैन मालेरकोटला
९. श्रीमती प्रीतमप्यारी धर्मपत्नी लाला जयगोपाल जैन जगरावां
१०. लाला टेकचन्द साधुराम जैन रायकोट
११. ला० छज्जूराम चमनलाल गुप्ता लुधियाना
१२. ला० सोमप्रकाश जैन ऐण्ड सन्ज वंगा (दोआवा)
१३. ला० देवीदयाल शान्तिकुमार जैन मालेरकोटला

श्री हेमराज कमलकिशोर जी कांसल
(तपे वाले)
वरनाला (पंजाव)

सिर्फ़ इतनी सी बात

एक लाख श्लोक से दस हज़ार, दस हज़ार से एक सौ, एक सौ से चार, चार श्लोकों से केवल चार-पद अर्थात् एक श्लोक में सारा सार रख देना कठिन ही नहीं कठिनतम है। ऐसे ही चन्दनबाला चरित का दो पृष्ठों पर से ही आपको अवबोध होजाए, अतः पढ़िये :-

एक बार 'कौशाम्बी' के राजा 'शतानीक' ने 'चम्पा' पर आक्रमण किया। 'चम्पा' के राजा 'दधिवाहन' ने राज्य-त्याग कर वन की शरण ली। 'शतानीक' ने सैनिकों को नगर लूटने का आदेश दिया। कुछेक ने धन लूटा, कुछेक ने ज़ेवर लूटे और कुछेक ने स्त्रियों को हस्तगत किया। एक रथिक ने 'दधिवाहन' की रानी 'धारिणी' और राजकुमारी 'वसुमती' (चन्दनबाला) का अपहरण किया। 'धारिणी' वैशाली गणराज्य के प्रमुख 'चेटक' की पुत्री और 'भगवान महावीर' के मामा की बेटी बहिन थी। उसका सतीत्व विश्व-विश्रुत था। रथिक उससे अपनी भोग-लालसा की पूर्ति चाहता था, किन्तु सती ने उसकी विकार-पूर्ण चेष्टाएं देखकर अपने हाथ से अपनी जीभ खींचकर प्राणों का

बलिदान कर दिया।

इस घटना से रथिक स्तब्ध रह गया। वह डरा कि 'वसुमती' भी अपनी माता के मार्ग का अनुसरण न करले। उसने 'वसुमती' से कहा—बेटी! डर मत, अब हृदय में कोई विकृति नहीं है। वह पुत्री बना कर उसे अपने घर ले आया। रथिक ने उसे बाजार में बेचा। एक वेश्या ने उसे खरीदना चाहा, परन्तु 'वसुमती' ने उसका निन्दनीय कृत्य स्वीकार नहीं किया। शील का चमत्कार हुआ। 'धनावह' नामक सेठ ने उसे खरीदा। वह उसके घर में दासी का काम करने लगी। सेठ ने उसका नाम 'चन्दनबाला' रखा।

'सेठ धनावह' की पत्नी मूला को सन्देह हुआ कि मेरा पति कहीं इसे अपनी पत्नी न बनाले। सेठानी ने अवसर पाकर 'चन्दनबाला' का शिर मुंडनकर हथकड़ियां और बेड़ियां पहनाकर उसे भोयरे में डाल दिया।

उधर 'भगवान महावीर' कौशाम्बी के घर-घर जाकर भी भिक्षा नहीं ले रहे थे। पांच महीने और पच्चीस दिन बीते। छब्बीसवें दिन 'धनावह' के घर पर 'चन्दनबाला' के हाथों से भगवान का तप और अभिग्रह फलित हुआ।

रथिक का, वेश्या का, 'मूला' का, 'शतानीक' का सुधार करने के पश्चात् 'दधिवाहन' का 'चम्पा' में पुनः अभिषेक

देख कर भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर आर्या चन्दना ने संघ-नायिका बनकर कैवल्य-पद प्राप्त किया।

इस रचना का आधार-स्तम्भ स्वर्गीय पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब की प्रसिद्ध पुस्तक 'सती वसुमती' अपर नाम 'चन्दनबाला' है। आचार्यों का साहित्य स्वतः प्रमाणित होता है। इसलिये मैं और मेरी कृति उनके आभारी हैं।

चन्दन मुनि

जागृत करदो जन-मानस को, अमर कवीश्वर! मुनि चन्दन !

युग युग तक तव अमर लेखनी, पाए जन-मन-अभिनन्दन ।

मुनिवर! पुण्य धरा से मेटो,
वाग्विभूति से जन-क्रन्दन !

सकल विश्व समवेत स्वरों में,
गाए जय जय जय चन्दन !

अव्याहत गति नभ जल थल में, दौड़े अमर कीर्ति का स्यन्दन !

भक्ति-स्वरान्वित इस वाणी के, हों स्वीकृत शत-शत वन्दन !

—तिलकधर
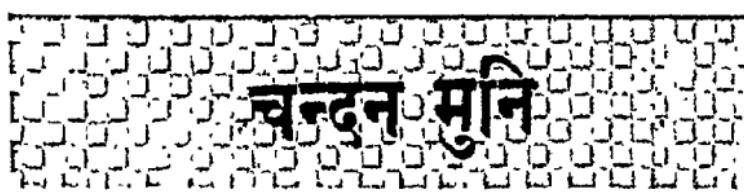
संगीत
महासती
चन्दनबाला

चन्दन मुनि

सुमन-सुवास-सी, विशुद्ध बाल-हास-सी ही
अमल आकाश-सी, प्रदीप्त दीप-ज्वाला सी
गज-सी गम्भीर गति, धरती-सी धीर मति
मधु-सी मधुर रति, पीयूष के प्याला-सी
पावन पवन-सी, सुहावनी सुसावन-सी
दामिनी-द्युति-सी दिव्य, मुक्ता-अरुण-माला-सी
सिंहनी-सी सबला, सुशील में प्रबला सती
देखी न चम्पा की 'चन्दन' चन्दनबाला-सी

नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स
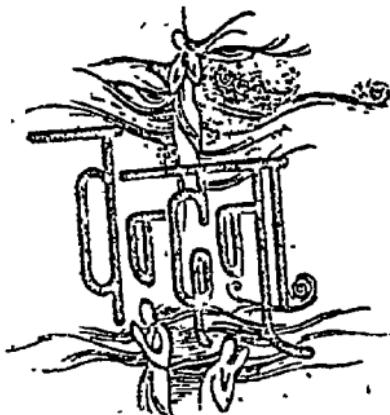
मंगलाचरण एवं उपक्रमणिका

ऐन्द्र-श्रेणि नत क्रम कमल, स्वस्ति श्री गुणधाम।
प्रथम जिनेश्वर को प्रथम, 'चन्दन' पुण्य प्रणाम ॥

अन्तिम जिनवर 'वीर' जिन, जयतु जिनेश महान।
'चन्दन' स्मृति से पा रहा, मन आनन्द-निधान ॥

गुरु-चरणाम्बुज में सदा, मन मधुकर है लीन।
कोई है नहिं दूसरा, उन-सा और प्रवीण ॥

द्रव्य-क्षेत्र-क्षण-भाव का, समुचित सुन्दर योग।
'चन्दन मुनि' का चरण[1] में, वरत रहा हर योग[2] ॥

---

१. चारित्र २. मनो वाक्काययोगाः।

[महासती चन्दनबाला]

दान, शील, तप, भावना, धर्म चतुर्विध शुद्ध।
'चन्दन' जिससे आत्मा, बन जाता है बुद्ध॥

ब्रह्मचर्य व्रत अति कठिन, बतलाया है एक।
'चन्दन' विरले वीर नर, रख पाते हैं टेक॥

हुए बहुत होंगे बहुत, बहुत-बहुत हैं लोग।
ब्रह्मचर्य व्रत के लिये, दिया जिन्होंने भोग॥

वक्त पड़ा जब कर दिया, प्राणों का बलिदान।
ब्रह्मचर्य व्रत रख लिया, 'चन्दन' वही महान॥

'सेठ सुदर्शन' को हुआ, 'अभया' का उपसर्ग।
'चन्दन' व्रत की अडिगता, गाता अब भी स्वर्ग॥

'सती धारिणी' को हुआ, कष्ट रथिक का घोर।
नष्ट नहीं होने दिया, शील धर्म का छोर॥

चरित-नायिका का चित्र

उड़द-बाकलों का दिया, 'महावीर' को दान।
'चन्दनबाला' का चरित, 'चन्दन' बहुत महान।

भोगों में जनमी पली, त्याग किया उत्कृष्ट।
'चन्दनबाला' ने सहे, 'चन्दन' कितने कष्ट ॥

क्रूर मनुष्यों ने किये, कितने अत्याचार।
'चन्दन' सुनने मात्र से, उठता है सीत्कार ॥

देने वालों ने दिये, कितने दुःख जघन्य !
'चन्दनबाला' ने सहे, बोलो 'चन्दन' धन्य !!

'चन्दन' चन्दन-सी रही, 'चन्दनबाला' एक।
घिसने वालों को दिया, शैत्य सुरभि सविवेक ॥

प्रथमा शिष्या 'वीर' की, आर्याओं में अग्र।
उसका लिखना है मुझे, 'चन्दन' चरित समग्र॥

भक्ति-शक्ति का समझिये, थी सचमुच अवतार।
'चन्दनबाला' का पढ़ो, 'चन्दन' चरित उदार॥

'चन्दन' आज समाज से, करता एक अपील।
सहनशील बन जाइये, अगर पालना शील॥

शील पालने के लिये, सहने होते कष्ट।
कायिक, वाचिक, मानसिक, 'चन्दन' कहता स्पष्ट॥

मौत सामने मान कर, लो लड़ने का नाम।
'चन्दन' डर कर भागना, है कायर का काम॥

हुआ स्पष्ट उद्देश्य बस, करूं कथा प्रारम्भ।
'चन्दन' आदिम वचन ही, कथा-महल का स्तम्भ॥

१ प्रथम चरण

चम्पापुर और नागरिक

भरत क्षेत्र के मध्य खण्ड में, सुन्दर पुर था 'चम्पापुर।
जिसे देखने पर भी आतुर, रहते पुनः निरखने सुर॥

द्विपथ,चतुष्पथ,त्रिपथ,राजपथ, गली-वीथियां रहतीं साफ़।
साफ़ स्वस्थ, जनता जब रहती, नगर साफ़ रहता है आप॥

कूड़ा-कर्कट जहां-तहां पर, नहीं डालते अच्छे लोग।
रोग फैल जाते हैं इससे, सभी भुगतते उसका भोग॥

स्वास्थ्य तभी अच्छा रहता है, साफ़ सफ़ाई पर हो ध्यान।
सभी नागरिक लोगों का है, नहीं एक का है कल्याण॥

राजमहल जो शान बढ़ाते, शान बढ़ातीं झोंपड़ियां।
काव्य सरस होगा इससे फिर, क्यों न सरस होंगी कड़ियां॥

तटिनी बहती मर्यादा में, कहती कब भी रुको नहीं।
चल सेवा का व्रत ले करके, चलने से तुम थको नहीं॥

चलने वाला निर्मल होता, जैसे मेरा जल निर्मल।
मल-मलकर जग मैल धो रहा, फिर भी प्रतिपल विमल तरल

तालाबों पर बावड़ियों पर, कूओं पर क्या है आराम।
इसीलिये नदियों के तट पर, बसे हुए हैं नगर तमाम॥

जब जी चाहे, जितना चाहे, कोई चाहे ले-ले जल।
नहीं नदी ने भिजवाया है, अपने कार्यालय से बिल॥

जल का दुरुपयोग मत करिये, जल जीवन है जीवन का।
तीन रत्न में प्रथम रत्न है, नहीं मूल्य कुछ भी धन का॥

रत्न दूसरा अन्न बताया, रत्न तीसरा मिष्ट वचन।
मूढ़ पत्थरों के टुकड़ों को, मान रहे हैं बड़े रतन॥

नदी-किनारे आते रहते, सुभग जाति के विविध विहंग
उन्हें निरख कर जाना जाता, प्रकृति बनाती कितने रंग॥

संग्रह करते नहीं, विचरते— अप्रतिबंध विहार विशुद्ध।
अल्प नींद लेने वाले ये, उषाकाल में होते बुद्ध॥

सघन गहन वन उपवन चारों ओर बड़े उद्यान भले।
बारहमासी फलने वाले, तरुओं से फल-फूल मिले॥

नगर वासियों को देते हैं, शुद्ध हवाएं हिल-हिल कर।
और मनोरंजन कर देते, फूलों के मिस खिल-खिल कर॥

जड़ें ज़मीं में जमी हुई हैं, झोंके आते आने दो।
इस रास्ते से उन्हें निकलना, खुशी-खुशी से जाने दो॥

बोले पादप—पवन! तुम्हारा, होता नहीं ठिकाना है।
कभी इधर से आना है तो, कभी इधर से जाना है॥

अगर हमारे आस-पास से, गुज़रोगी तो होगी शुद्ध।
शुद्ध हवा खाने को आते, उद्यानों में वृद्ध-प्रबुद्ध॥

'चम्पापुर' की धरती और किसान

अन्नोत्पादन संरक्षण, संवर्द्धन करते वहां किसान।
धरती के दोग्धा का होता, धरती पर सम्मान महान॥

अन्न दिया करती जीने को, रहने को देती है स्थान।
इसीलिये तो जन्म-भूमि को, 'चन्दन' माना स्वर्ग समान॥

माता, धरतीमाता का है, मानव पर उपकार महान।
उऋण कभी न हो पाता है, 'चन्दन' देकर जीवन दान॥

कितने ही सुत हो जाने पर, मां का दिल रहता है एक।
टुकड़े नहीं हुए धरणी के, धरणीपति हो गए अनेक॥

चम्पापुर का निकटवर्ती प्रदेश

'चम्पापुर' के आस-पास का क्षेत्र बहुत उपजाऊ था।
कृषि-गोपालन द्वारा अपना, जीवन काम चलाऊ था॥

गांवों का नगरों से जितना, होता है अच्छा सम्बन्ध।
नगरों में उतना ही 'चन्दन' होता अच्छा पूर्ण प्रबन्ध॥

गांवों के प्रति जो अपना, उत्तर-दायित्व संभाला था।
'चम्पापुर' का योग्य नागरिक, उसे निभाने वाला था॥

किसी वस्तु की कमी कभी भी, कृत्रिमता से हुई नहीं।
प्रकृति ने जो दिया नहीं तो, कहते 'चन्दन' सही-सही॥

ग्रामीणों की निश्छलता का, अनुचित लाभ न लेते लोग।
इनकी उन्नति अपनी उन्नति, 'चन्दन' बड़ा सुखद सहयोग॥

'ये स्वार्थी हैं, ये बुद्धू हैं,' कभी न करते हीन विचार।
एक दूसरे का आपस में, 'चन्दन' इसीलिये था प्यार॥

'चम्पापुर' का राजा 'दधिवाहन'

'चम्पापुर' का प्रतिपालक था, 'दधिवाहन' भूपति गुणवान ।
अपनी रैय्यत को गिनता था, दिल से प्यारे प्राण समान ॥

रैय्यत की खुशियों पर खुशियां, राज-महल में पलती हैं ।
बिजली-घर के द्वारा ही तो, लगी बत्तियां जलती हैं ॥

लिया गया ऐश्वर्य इन्द्र से, लिया अग्नि से पुण्य-प्रताप ।
यम से क्रोध, धनद से धन ले, 'चन्दन' राजा बनता आप ॥

सभ्य जनों के लिये चन्द्र सम, शीतल होता था व्यवहार ।
दुष्ट दमन के लिये इन्द्र का, मानो होता वज्र-प्रहार ॥

जीर्ण-शीर्ण तरुओं को माली, देता है ज्यों स्वयं उखाड़ ।
कच्चे पौधों की रक्षा हित, खड़ी किया करता है बाड़ ॥

सिंचन संवर्धन संरक्षण— द्वारा पाला जाता बाग ।
इन्हीं गुणों पर आधारित है, 'चन्दन' भूपति का सौभाग ॥

सभी अवयवों का पालन ज्यों, होता है मुख के द्वारा ।
तेज सितारा 'दधिवाहन' का, 'चन्दन' शासन सुखकारा ॥

सभी तरह से पूर्ण सुरक्षित, प्रजा मानती अपने को ।
पिता समझती पृथ्वीपति को, पुत्र जानती अपने को ॥

देश-भक्ति का राष्ट्र-भक्ति का, लोगों में था बड़ा प्रचार।
राजा समझा जाता 'चन्दन' परमेश्वर का ही अवतार ॥

'कर' से प्राप्त द्रव्य का व्यय भी, सम्मति लेकर करता था।
रखी धरोहर यहां प्रजा ने, मुख से यह उच्चरता था ॥

न्यायी[1] नृपति कभी होते हैं, धन्य! धन्य! नृप 'दधिवाहन'।
लोग समझते नृप-शासन को, 'चन्दन' अपना ही शासन ॥

'चम्पापुर' की महारानी धारिणी

नाम-'धारिणी' सुन्दरी, सीता माता तुल्य।
स्वर्ण सदृश नृप को मिली, 'चन्दन' सुरभि अमूल्य ॥

वाणी अमृत-सी मधुर, राजहंस-सी चाल।
उत्तमता रखती सदा, प्यारे 'चन्दनलाल' ॥

चलना, उठना, बैठना, रहना, करना और।
सोना, जगना, देखना, करती करके ग़ौर ॥

---

१. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

व्यवहारों में परखती, दुनियां उत्तम लोग।
हरगिज छिप सकता नहीं, किस को क्या है रोग॥

पति-सेवा को समझती, प्रथम परम कर्त्तव्य।
जिस में पति-अनुमति नहीं, कृति वह परिहर्त्तव्य॥

राज-काज में भी स्वयं, देती मत सहयोग।
'चन्दन' अच्छाई सदा, लेते रहते लोग॥

अहंकार आलस्य से, बचती रहती आप।
काम किया जो हाथ से, 'चन्दन' होता साफ़॥

धैर्य और गांभीर्य की, प्रतिमा थी साक्षात।
कुछ भी तुनक मिजाज की, नहीं सुहाती बात॥

पति को कहती प्रेम से, करिये न्याय हमेश।
सोच-समझ कर दीजिये, जो भी दें आदेश॥

अधिकारों के भार को, वहन करो सप्रेम।
अच्छे नृप की नीति से, सदा सुरक्षित क्षेम॥

महलों का क्या जगत का, रानी थी शृंगार।
'चन्दन' नारी नाम से, देवी का अवतार॥

दिव्य शक्तियां अवतरीं, ले नारी का नाम।
तभी 'धारिणी' कर सकी, जग में ऊंचे काम॥

'चम्पापुरी' और धर्म निरपेक्षता

सभी जाति के लोग वहां पर, जातिवाद का नाम नहीं।
अपने धर्म-कर्म करते हैं, ईर्ष्या का कुछ काम नहीं॥

कोड़ीध्वज थे सेठ बहुत से, धन का नहीं ज़रा अभिमान।
हीन नहीं निर्धन होने से, धन होने से नहीं महान॥

ऊंच-नीच का मापदंड धन, गिना नहीं विद्वानों ने।
इसीलिये अपमान किसी का, सुना नहीं इन कानों ने॥

दान दिया करते धनपति पर, कहते सामाजिक सहयोग।
आवश्यकता वाले ही तो, लेने को आते हैं लोग॥

आज हमारे पास अर्थ है, इसीलिये हम देते हैं-।
जैसे हमें ज़रूरत हो तब, बैंकों से ले लेते हैं॥

सेठ लोग भी सेठों से क्या, कभी नहीं लेते हैं धन?
लिये बिना कब काम निकलता, ठप्प सभी होता जीवन॥

सभी लोग लेते-देते हैं, भेद मानने का होता।
भेद-दृष्टि ने दिया जगत में, भारी कष्टों को न्योता॥

चम्पापुर और व्रत धारी श्रावक

जैनधर्म के अनुयायी थे, दृढ़ धर्मी 'श्रावक' प्यारे।
शुद्धाचार विचार सार युत, जीवन जीते थे सारे॥

आवश्यक कर्त्तव्यों का ज्यों, होता है विधिवत पालन।
धार्मिक विधियां करने में क्यों, 'चन्दन' आता आलसपन॥

सोचो सारे सुख फलते हैं, धर्म-जड़ें जो हरी-भरी।
सूख गया जो मूल धूल में, मिल जाएगी मौलसिरी॥

सुलभ वोधि, सम्यक्त्वी[1],बारह- व्रतधारी, प्रतिमाधारी।
थे आराधन करते 'चन्दन', शुद्ध धर्म का सुखकारी॥

---

१. या देवे देवता बुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः,
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमुपलभ्यते।
अदेवे देवता बुद्धिर्गुरुधीरगुरौ च या,
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वमेतदेव हि॥

अर्थात्—सुदेव में देवबुद्धि, सुगुरु में गुरु-बुद्धि और सुधर्म में शुद्ध धर्म-बुद्धि रखने को 'सम्यक्त्व' कहते हैं और कुदेव मे देव-बुद्धि, कु-गुरु में गुरुबुद्धि और कुधर्म में धर्मबुद्धि रखने को 'मिथ्यात्व' कहते हैं।

बनी हुई पौषधशालाएं, बने उपाश्रय आलीशान।
स्थान-स्थान पर व्याख्यानों की, 'चन्दन' मचती धूम महान ॥

सत्संगति से जग जाती है, सोई हुई अमर आत्मा।
जिसने पाया जब भी पाया, जागृत द्वारा परमात्मा ॥

अनासक्ति के द्वारा करते, रहते थे सांसारिक काम।
आत्मोन्मुखी वृत्तियां रखते, जैनधर्म का ऊंचा नाम।

सत्य बोलना सत्य तोलना, एक रूप मिल जाता माल।
चाहे ग्राहक चतुर पुरुष हो, नारी हो अथवा बाल ॥

ग्राहक तो मालक होता है, आदर करते दे आसन।
उपजाते सन्तोष वस्तु दे, और मिष्टतम कर भाषण ॥

ज्यादा लेना कमती देना, कहना कुछ करना कुछ और।
क्या ऐसे होते व्यापारी ? 'चन्दन' ये होते हैं चोर ॥

अनजाने को ठग जाने में, स्वयं समझते चतुर चकोर ॥
क्या ऐसे होते व्यापारी ? 'चन्दन' ये होते हैं चोर ॥

इन बातों से बहुत दूर थे, 'चम्पापुर' के व्यापारी।
भाव एक ही एक वस्तु का, नहीं कहीं पर ठगमारा ॥

चम्पापुर का व्यापार

सभी वस्तुओं का वहां, होता था व्यापार।
बने हुए थे ढंग से, अलग-अलग बाज़ार ॥

दाम दीजिए लीजिए, जो चाहे सो माल।
राम दाम में है सदा, 'चन्दन' बड़ा कमाल ॥

धन बढ़ता व्यापार से, धन से फिर व्यापार।
एक दूसरे का सदा, 'चन्दन' है आधार ॥

'दधिवाहन' और सन्तानैषणा

राजा-रानी, प्रजा सुखी है, देश काल सुखमय सारा।
दुःख किनारे बैठा-बैठा, कांप रहा था बेचारा ॥

'दधिवाहन' के रहते मुझको, कहीं नहीं मिल सकता स्थान
एक दुःख ही महादुखी है, बाक़ी सभी सुखी गुणवान ॥

राजा हो चाहे हो रानी, चाहे कोई नर-नारी।
जो सन्तान नहीं चाहता, ऐसा है क्या संसारी ?

सन्तति की अभिलाषा रखता, आया है प्रत्येक गृहस्थ।
अपना वंश आपके द्वारा, कैसा होने देगा ध्वस्त ॥

शारीरिक कमियां न अगर हों, अन्तराय का उदय न हो।
बहुत असम्भव है दम्पति को, 'चन्दन' इसमें विजय न हो॥

लड़का हो चाहे हो लड़की, लेकर आते अपने कर्म।
लड़की वाले मात-पिता को, किसी तरह की क्या है शर्म॥

भेद-भावना रखने वाले, मात-पिता क्या ज्ञानी हैं ?
मातृशक्ति की पूजा-पद्धति, जग में बहुत पुरानी है॥

क्या लड़की होने पर मां के, नहीं स्तनों में पय आता ?
क्या लड़की अपनी माता को, नहीं बनाती है माता ?

क्या लड़की के मन में मां के, प्रति कुछ कम होती ममता?
फिर लड़की लड़के में बोलो, क्यों न रखी जाती ममता ?

राजा-रानी की इच्छा थी, चाहे जो होवे सन्तान।
पुत्र और पुत्री दोनों ही, होंगे 'चन्दन' एक समान॥

पुत्री का जन्म और नामकरण

हुई सगर्भा 'धारिणी', सुख में जाता काल।
सारे नारी जगत से, उठता एक सवाल॥

दुःख सहन कर हम सदा, देतीं आई रत्न।
मातृ-जाति का मान हो, करना यही प्रयत्न॥

मां में जो वात्सल्य है, उसका सौवां भाग।
मातृ-शक्ति के चरण में, 'चन्दन देना त्याग॥

वसुमती का जन्म

मां के ममता-सूत्र को, कभी न देना तोड़।
झुक कर 'चन्दन' चरण में, हाथ दीजिये जोड़॥
देव गुरु सम श्रेष्ठ है, मां का ऊंचा स्थान।
इसको कभी न भूलिये, दो उसको सम्मान॥
शुभ अवसर पर एक दिन, जन्मी कन्या एक।
सारे ही हर्षित हुए, मुख की आकृति देख॥
पुत्रोत्सव सम राज्य में, उत्सव किये अनेक।
नाम रखा है 'वसुमती', लग्नादिक ग्रह देख॥
परिचय देती पुण्य का, रहती प्रतिपल स्वस्थ।
पूर्व जन्म के भाव से, 'चन्दन' शिशु अभ्यस्त॥

वसुमती की शिक्षा-दीक्षा

माता मन में लगी सोचने, इसको ऐसे ढालूंगी।
सारी दुनिया जिसे सराहे, उसी ढंग से पालूंगी॥
मेरी पुत्री द्वारा कोई, स्थापित किया जाय आदर्श।
इससे बढ़कर मातृ-हृदय को, हो भी क्या सकता है हर्ष?
लालन-पालन की वातों में, बचपन बीत गया तत्काल।
पूरा-पूरा ध्यान दीजिये, बालक का जब शिक्षाकाल॥
सत्य,सरलता,निरभिमानिता, मृदुता, पटुता सिखलाई।
सकल कलाओं की प्रतिमा-सी, घड़ने को मां ललचाई॥

अल्प समय में सिखलाया है, मा ने इसको ज्ञान अनल्प।
बड़े वैद्य ने करवाया है, जैसे कोई काया-कल्प॥

जभी बजाने लगती वीणा, सरस्वती-सा लगता रूप।
सारे श्रोता भूल बैठते, छाया है या ऊपर धूप॥

भाषण देती कभी सभा में, श्रोता बनते चित्र समान।
क्या, किसने, कब, कितनी कहना, इसका इसको पूरा ध्यान॥

पूर्ण निपुणता प्राप्त हो गई, इसे शीघ्र सब कामों में।
शामिल किया गया इसको भी; विद्वानों के नामों में॥

शान्त: सर्वप्रिय; सरल शीघ्र, मिलनशील है स्वच्छ स्वभाव
मिलने वालों पर पड़ जाता, पहले से ही पूर्ण प्रभाव॥

एक बार जो मिली वही फिर, इच्छा करती मिलने की।
इच्छा करती नहीं कभी भी, मिल करके घर चलने की॥

सहेलियों को घर वालों को, बहुत-बहुत लगती प्यारी।
इसीलिये तो उसे निरखने; को ललचाते नर-नारी।

एक बार सौ बार देख कर, तृप्त नहीं होता मानस।
तृप्ति-जनक दर्शन से दर्शक, इकदम होते हैं परवश॥

अपने मन में अहंकार को, नहीं दिया कन्या ने स्थान।
अहंकार से गिरना है नर, पूरा इसका रखिये ज्ञान॥

वसुमती को संगीत-शिक्षण

सखियां कभी सराहा करतीं, कहतीं तुम हो कोई शक्ति।
व्यक्ति विशेषों द्वारा ही तो, शक्ति दिखाती है अभिव्यक्ति

कार्य अलौकिक की आशा से, माता होती सदा प्रसन्न।
'चन्दन' कभी रहा करते हैं, ऊंचे लक्षण भी प्रच्छन्न ?

वसुमती और यौवन

बचपन सहज सरल बातों से, सुख पूर्वक जाता है बीत।
यौवन का आगमन कठिनतम, होता सचमुच सदा प्रतीत ॥

वया मे नया परिवर्तन लेते, अंग तथा सारे प्रत्यंग।
बदल दिया जाता दुनिया में, सारा रहन-सहन का ढंग ॥

कोई देखो कोई परखो, बचपन होता है निर्दोष।
यौवन-रत्न छुपाया जाता, गुप्त रखा जाता ज्यों कोष॥

कन्याओं को अधिक सजगता, रखनी होती यौवन में।
तन में परिवर्तित चिन्हों से, परिवर्तन आता मन में ॥

विकसित हुई स्वतः सुन्दरता, यौवन का पाकर सहयोग।
अनुपानों से औषधियां ज्यों, रोगी को करतीं नीरोग ॥

सहेलियां करती थीं बातें, शादी शीघ्र रचाई जाय।
सुनती नहीं, नहीं सोचती, 'वसुमती' मन में ऐसा प्राय: ॥

शुद्ध हृदय की एक बालिका, जैसा जीवन जीती है।
शिक्षामृत का प्यारा प्याला, पूर्ण प्रेम से पीती है॥

विवाह और ब्रह्मचर्य

सुता सियानी हो जाने पर, सोचा करते हैं मां-बाप।
योग्य विवाह रचा कर इसका, होना उऋण हमें है आप॥

अगर योग्य मिल जाए लड़का, लड़की को सुख हो जाए।
ऐसा होजाने पर क्यों न, हर इक चिन्ता खो जाए॥

होता वही जिसे जब होना, तब चिन्ता करना है व्यर्थ।
बदल सके जो होनहार को, ऐसा कहिये कौन समर्थ ?

जैसी किस्मत होती उसकी, वैसा होता सदा प्रयास।
माध्यम मात-पिता बन जाते, मिलता अनायास शाबाश॥

क्या शादी के सिवा और भी, सुखी बनाने का है पन्थ ?
अगर जानते हो तो बोलो, सच्चा साध्य सरल अत्यन्त॥

ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर के, रखा जाए ऊंचा आदर्श।
जीया जाए मर करके भी, जग में और हजारों वर्ष॥

दोनों मार्गों में से 'वसुमति', कैसा पन्थ चुनेगी जी !
'चन्दन' सुनने वाली संगत, सारी कथा सुनेगी जी !

सखियां कहतीं—सखी! तुम्हारा, साथी होगा राजकुमार ।
नया साज शृंगार बना कर, नया बनाओगी संसार ॥
नये महल में नए-नए सब, नई बनोगी तुम दुलहिन ।
हमें छोड़कर तुम रह लोगी, रह न सकेंगी हम तुम बिन ॥
याद करोगी हमें वहां पर, हमें नहीं होता विश्वास ।
याद तुम्हारी जब आएगी, तब लेंगी हम लम्बे श्वास ॥
हमें आपसे जो सुख मिलता, उससे वंचित होंगी हम ।
लेकिन निश्चित बन जाओगी, सुखी आनन्दित वंदित तुम ॥
फिर भी हम आशा करतीं हैं; शीघ्र वही शुभ दिन आये ।
किसी सुयोग्य राज-पुत्र से पाणिग्रहण किया जाये ॥
तेरे योग्य गुणों का आदर, करने वाला सुन्दर वर ।
तुझे अधिक सुख देने वाला, प्रेम निभाए जीवन भर ॥
अभी नहीं फिर कभी मिलोगी, तब पूछेंगी बातें हम ।
शरमाना मत, बतलाना सब, बहना ! सच्ची बातें तुम ॥
खुल कर बातें करने का तो, सखियां ही होतीं हैं स्थान ।
तेरे जैसी सखी प्राप्त कर, सचमुच हम हैं सुखी महान ॥
जिसने सखी नहीं पाई वह, नहीं सुखी है बेचारी ।
किसे बुलाए गले लगाए, किस पर जाए बलिहारी ?

दो सखियों के मिलने में जो, सुख होता है कहा न जाय।
'चन्दन' ढूंढ लिये जाते हैं, मिलने के कुछ नये उपाय ॥

वसुमती के विचार

सहेलियों की बातें सुनकर; 'वसुमती' उत्तर देती साफ़।
प्रेम संकुचित हो जाएगा, बहनो! यही सोचती आप?
अब तक जिनसे प्रेम किया है, उनसे पहले तोड़ूं प्रेम?
सिर्फ़ एक ही आत्मा से फिर, नये सिरे से जोड़ूं प्रेम?
जिनसे जोड़ा उनसे रखना, यावज्जीवन तक सम्बन्ध।
प्राणिमात्र तक उसे बढ़ाने, का फिर बहनों! करूं प्रबंध॥
पाणि-ग्रहण बड़ा बन्धन है; कम हो जाता है औदार्य।
इसीलिए स्वीकार मुझे है, सखियो! जीवन भर कौमार्य॥

सखियां हुई स्तब्ध हैं सारी, सुनकर इतने उच्च विचार।
कन्याओं में ब्रह्मचर्य का, होगा अब से नया प्रचार॥
नये विचार प्रवर्तन होते, अगर योग्य आत्मा से अत्र।
उनका भारी आदर होता, देखो यत्र तत्र सर्वत्र॥
अविवाहित रहने में कितनी, विपदाएं घिर आएंगी।
प्यारी राजकुमारी कैसे, उनको दूर हटाएंगी?

प्रतिज्ञा

सखियां बोलीं—फिर से सोचो, जब तक है आपस की बात।
बाहर बात निकल जाने पर, कभी न आया करती हाथ॥

"इसका सही समाधान तो, समय बताएगा तुमको।
अभी पूर्ण विश्वास बात का, कैसे आएगा तुमको॥"

धारिणी और वसुमती की सखियां

सुना 'धारिणी' रानीने जब, सखियों द्वारा यही प्रसंग।
अन्तरंग में लगी उछलने, सचमुच सच्ची हर्ष-तरंग॥

मेरी उच्च कामना सचमुच, इसके द्वारा होगी पूर्ण।
धन्य बनूंगी मैं, जब लेगी, कन्या ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण॥

पाणि-ग्रहण प्रथा की रीति यद्यपि है सुख का साधन।
किन्तु वहां होता है फिर भी, विधियों का सर्वाराधन॥

दवा दिया जाता नारी को, समझा जाता दासी तुल्य।
सुने न जाते किसी क्षेत्र में, नारी के सुविचार अमूल्य॥

धर्म-ग्रन्थ पढ़ने का इसको, दिया न जाता है अधिकार।
बढ़ने का अवसर देने से, पुरुष स्वयं करता इनकार॥

योग्य पुरुष मिल जाने पर तो, मिल जाते अच्छे अवसर।
वरना सुबक-सुबककर जीए, अत्याचारों से दब कर॥

अगर शौर्य जागृत हो जाए, कन्याओं में तेज महान।
नहीं नारियों का ही होगा, होगा सब जग का कल्याण॥

जागृति-शंख बजे नारी से, गूंज उठेगा तब आकाश।
घर-घर जाकर फैलाएंगी, किरणें सुन्दर नवल प्रकाश॥

प्रथम किरण हो मेरी पुत्री, इसका होगा नाम अमर।
उत्साहित-प्रेरित करने में, अपनी कसनी मुझे कमर॥

दधिवाहन और धारिणी

"राजा जी से रानी जी ने, एक समय में छेड़ी बात।
लड़की हुई सयानी अपनी, मन में स्वयं सोचिये नाथ!

वय से गुण से और कलाओं- से वह योग्य हुई भारी।
मति से,गति से,कृति-आकृति, सबसे लगती है प्यारी॥"

सुनी धारिणी की जब बातें, फूले नृप न समाते हैं।
मधुर-मधुर रसना से ऐसे, दधिवाहन बतलाते हैं॥

उसको योग्य बनाया तुमने, तुम हो धन्यवाद की पात्र।
अध्यापिका शोभित होती, योग्य निकलते हैं जब छात्र॥

'मेरे से भी बढ़कर मेरी, पुत्री हुई प्रशंसा-पात्र।
उपादान ही कारण सच्चा, केवल हम नैमित्तिक मात्र॥

सुखी बनाया जाय इसे अब, इस पर करना, हमें विचार।
क्या सोचा है, कहो आपने ? रखते पिता पूर्ण अधिकार॥

सच कहती हो, किन्तु पिता से, बढ़कर माता का अधिकार—
पुत्री पर माना जाता है, इससे सहमत है संसार॥'

नारी के नाते हैं मुझ को, अनुभव जितने हुए सही।
उनका लाभ मिले पुत्री को, मेरी इच्छा यही रही॥

'साफ़ कहो जो कुछ कहना है, उस पर मिलकर करें विचार
वही करेंगे जो पुत्री को, खुशी-खुशी होगा स्वीकार॥

धारिणी के निजी अनुभव

सुनिये नाथ! ध्यान से कृपया, कहना बुरा न माना जाय।
सभी समान नहीं होते हैं, किन्तु अधिकतर जाना जाय॥
राजघराने के पुरुषों का, नारी के प्रति दुर्व्यवहार।'
बहुत-विवाह-प्रथा से जन्मे, कष्टों का है नहीं शुमार॥
छोड़ दिया जाता पहली को, नहीं बोलते फिर उससे।
किसी महल में रख दी जाती, दुःख सुनाए वह किससे ?

राजा माने रानी होती, बाक़ी पानी भरा करें।
जीवन भर अपने राजा पर, लम्बे आंसू झरा करें॥

क्या पुरुषों की इस आदत पर, नहीं स्त्रियों को आता रोष?
दोष प्रथा का सही समझलें, नहीं कर्म का कोई दोष॥

मृगया, मधुपानक में रत हो, दुर्व्यसनों में रहते चूर।
इसे महत्ता क्या मानोगे? मानवता से कोसों दूर॥

दया नहीं दिल में दिखलाते, पशुता-पूर्ण क्रूर व्यवहार।
अनाचार की हुई आज तक, जान-बूझकर स्त्रियां शिकार॥

सबसे होता आया वैसा, होगा मेरे से व्यवहार।
नारी कहलाने वाली मैं, किसके आगे करूं पुकार?

पुरुष निभाते रहे हमें तो, हम किस लायक जन्मी हैं।
धर्म-पन्थ के नायक भी तो, हुए अधिकतर वहमी हैं॥

तात्कालिक धर्माचार्यों ने, परम्पराएं कर दी पुष्ट।
'चन्दन' ऊंट चढ़ा अब कर पर, महादुष्ट बन जाता दुष्ट॥

कन्या नहीं कंवारी रहती, तोड़ा जाए यही विधान।
प्यारे! है मन्जूर मुझे तो, मेरी पुत्री का बलिदान॥

पाणिग्रहण नहीं आवश्यक, ब्रह्मचर्य वह पालेगी।
कठिन सवालों के उत्तर भी, अपने आप निकालेगी॥

पुरुष महान अगर होते हैं, नहीं रहेगी नारी दीन।
नहीं विवाह कराएगी वह, नहीं रहेगी पुरुषाधीन।

नाम जपे जाते पुरुषों के, लेंगे फिर सतियों के नाम।
रोका नहीं गया जो इनको, करने से प्रिय! ऊंचे काम ॥
प्रत्येक क्षेत्र में पाएं अब से, महिलाएं अधिकार समान।
मातृ-शक्ति के चरणों में तब, झुक जाएगा सकल जहान ॥

दधिवाहन का विश्लेषण।

सुनो 'धारिणी'! हो सकता है, कहीं-कहीं ऐसा होता।
स्त्रियां सभी क्या अच्छी होतीं, पुरुष भार जिनका ढोता?
सभी पुरुष कर्त्तव्य-विमुख हैं, ऐसा कैसे माना जाय।
अच्छे वर को चुनने में हम, अपनाएंगे सरल उपाय ॥

अद्वितीय है अपनी कन्या, वैसा ही ढूंढेंगे वर।
सास-ससुर परिवार धान्य धन, सुख से भरा हुआ हो घर ॥
अच्छी स्त्री के आने से, बहुत सुधर जाता है घर।
परमाधामी से परमात्मा, बन जाता है उसका वर ॥

योग्य नारियों ने यत्नों से, पति से छुड़वाए व्यभिचार।
अपना शील सुदृढ़ रख करके, पति का किया पूर्ण उद्धार ॥
अगर पत्नियां अपने पति का, कर पाएंगी नहीं सुधार।
वैसी कन्याओं से कैसे, सुधर सकेगा यह संसार?

'धारिणी' उवाच

है अपनी प्यारी पुत्री में, एक सुधारक-की क्षमता।
ब्रह्मचारिणी रहने दें यह, प्रश्न यहीं आकर थमता ॥
अविवाहित रह बह कर देगी, पतित-जनों का शुभ उद्धार।
सखियों द्वारा मैंने ऐसे, जाने उसके सही विचार ॥
मैं भी इससे ही सहमत हूं, ब्रह्मचारिणी रहे हमेश।
अभिमत अपना प्रगट कीजिए, और दीजिए शुभ आदेश ॥

'दधिवाहन' उवाच

पति का हित करनेवाली का, लक्ष्य न होता भोग-विलास।
हर्ष सहित निज हित तजने से, पर हित का होता आभास॥
मुझे धर्म पर स्थिर करने में, तुमने भी तो त्यागा स्वार्थ।
नारी के हित हो सकता क्या? इससे बढ़ कर भी परमार्थ ॥
इसीलिये अविवाहित रखना, उचित नहीं कहलाता है।
भय से तभी भिड़ा जाता है, जब भय सम्मुख आता है ॥
पुण्यवती पुत्री को होगा, पुण्यवान पति का संयोग।
अविवाहित कन्या होती है, जीवन भर का भारी रोग ॥

धारिणी उवाच

मैंने नाथ! आपके हित में, जो भी त्यागा अपना स्वार्थ।
अगर कंवारी रह कर करती, होता अधिक और परमार्थ॥
तो कितना अच्छा होता जी, कितनों का होता उद्धार।
कार्य-क्षेत्र में उतरा जाए, तभी सूझते नए विचार॥
इस निर्णय पर मैं पहुंची हूं, ब्रह्मचर्य व्रत पाला जाय।
शक्ति नहीं व्रत लेने की तो, पाणिग्रहण न टाला जाय॥
कष्ट उठाने कष्ट मिटाने, अविवाहित रख देना है।
उसे बुलाकर समझा कर, मत उसका भी लेना है॥

दधिवाहन उवाच

धन्य धारिणी! मैं न जानता, तेरे में है इतना त्याग।
हुआ बहुत आश्चर्य मुझे तो, लख कर ऐसा पूर्ण विराग॥
ब्रह्मचारिणी रह करके जो, दुनियां को देगी उपदेश।
बिल्कुल सही बात है जग का, मिटा सकेगी भारी क्लेश॥
किन्तु जानती हो, यह जीवन, करना अच्छी तरह व्यतीत।
कन्याओं के लिये अभी तो, भारी होता कठिन प्रतीत॥
बहुत लोग व्रत ले लेते हैं, जब आ जाता है आवेश।
नहीं रुका आवेग काम का, तोड़ डालते नियम विशेष॥

अगर हमारी लड़की व्रत को, निभा न पाई जीवन भर।
उसको, तुमको, मुझको, सबको, जीना मुश्किल होगा फिर॥

वह बच्ची है उसे न अनुभव, दुनिया की इन बातों का।
उसका भला-बुरा जो होगा, सारा अपने हाथों का॥

बहुत उचित है हम दोनों को, लें उसकी इच्छाएं जान।
इसमें ही है हम सारों का, पूर्णतया रानी! कल्याण॥

नहीं विवाह ब्रह्मचर्य भी, होगा इच्छा के विपरीत।
कार्य-पूर्व स्वीकृति लेने की, उत्तम विद्वज्जन की रीत॥

नहीं जानती कन्या इच्छा, अपनी शादी करने की।
ब्रह्मचर्य व्रत लेने वाली, बात न करती डरने की॥

'अच्छा, स्पष्ट रूप से उसकी, इच्छा पहले लेनी जान।
फिर बतलाना मुझे बाद में, निर्णय पर हम देंगे ध्यान॥

अन्तिम निर्णय यही रहा अब, दोनों सोए कर प्रभु-ध्यान।
मीठी निद्रा से होता है, चिन्ताओं का कुछ अवसान॥

वसुमती का सपना

इसी रात के समय सो रही, कन्या भी अपने आवास।
बड़ा विचित्र स्वप्न आया है, पाया सूर्योदय भी पास॥

१८. स्वप्न

उठकर सपने के चिन्तन से, लगी सोचने बुरा-भला।
किन्तु नहीं सपने का कोई, सही अर्थ निश्चित निकला॥
इसीलिये शय्या से उठकर, गई वाटिका में अब आप।
वातावरण शुद्ध होने से, अर्थ सूझना बिल्कुल साफ़॥

सखियों की चिन्ता

सहेलियां पहुंची महलों में, प्रातः उसे जगाने को।
मंगल वचनावलियों द्वारा, उसका मन बहलाने को॥
शयनागार पड़ा है सूना, चिन्तित चकित हुई इक साथ।
कहां गई है राजकुमारी, भारी बुरी हुई यह बात॥
राजकुमारी और अकेली, युवती का जो मिला न खोज।
दुर्घटना का हम लोगों के, सिर पर सब आयेगा बोझ॥
तुम्हीं पास में रहती थी तो, तुम को ही देना था ध्यान।
लगीं ढूंढने इधर-उधर सब, आखिर पहुंचीं वे उद्यान॥

सखियां प्रश्न और विनोद

खोई हुई विचारों में यों, बैठी राजकुमारी है।
सखियां बोलीं—भला हुआ है, इज़्ज़त रही हमारी है।

विना सूचना दिये हमें क्यों, चली अकेली आई आप ?
नींद नहीं क्यों आई, छाई, मुख पर किसी दुःख की छाप?

चिन्तन टूटा एक वार तो, सुनकर सखियों की आवाज़ ।
कुछ भी नहीं वोलने से फिर, गहरा और हो गया राज़ ॥

चिंतातुर हैं हम तो सारी, आप न क्यों देतीं उत्तर ?
क्या वोलेगी यह वेचारी, तुम सारी हो मूर्ख-चतुर ॥

सुता सियानी हो जाने पर, नहीं निकल सकते हैं वोल ।
नहीं कभी दिखला सकती है, सबको अपना अन्तर खोल॥
पाणिग्रहण न हुआ अभी तक, सोच रही है मन ही मन ।
अंग-अंग से फूट रहा है, अद्भुत रंग भरा यौवन ॥"

वोली सखी दूसरी—"ऐसे, चिन्ता करने से क्या लाभ ?
मात-पिता वर ढूंढ रहे हैं, मिल जायेगा अभी जवाव ॥

छोड़ो चिन्ता उठो यहां से, हो जायेगा शीघ्र विवाह ।
रानी वनने वाली हो तुम, हंसो ज़रा हो वेपरवाह ॥

विनोद का उत्तर

सुन कर सोचा राजसुता ने, इन वहनों का कैसा हाल ।
अपनी वृत्ति मुताविक लेनी, किसी वात का अर्थ निकाल॥

सखियो ! मेरा और तुम्हारा, सदा रहा सुन्दर सम्बन्ध ।
किन्तु तुम्हें तो विषयों की ही, बातों में आता आनन्द ॥
अपने जैसा मुझे समझतीं, सत्य समझना नहीं सरल ।
पत्थर बढ़िया नहीं मिला तो, अच्छी कैसे बने खरल ॥

सब पर तीन ऋण हैं

सुनो तीन ऋण शिर पर होते, ढोते नर-नारी प्रत्येक ।
मात-पिता का शिक्षा-गुरु का, कोई नीति शास्त्र लो देख ॥
श्वसुरालय का ऋण लेना, न- लेना अपने पर निर्भर ।
ऋण से मुक्त बनो तुम सारी, ऐसा ही ढूंढो अवसर ॥
मात-पिता के ऋण से उऋण, होना होता क्या आसान ?
ससुरालय जाने का मेरा, कैसे लगा लिया अनुमान ॥
पहले इनकी सेवा करना, मैंने अपना माना फ़र्ज़ ।
इनका क़र्ज़ उतारूंगी मैं, नया न लूंगी कोई क़र्ज़ ।
विषय-भोग की शिक्षाएं दे, मुझे न पाला माता ने ।
ब्रह्मचर्य के सांचे में ही, मुझ को ढाला माता ने ॥
मुझे कहा मेरी माता ने, मानव-जन्म न बारम्बार ।
विषय-वासनाओं में पड़कर, इसे न हरगिज़ जाना हार ॥

अगर तुम्हारी शक्ति न हो तो, मर्यादित रखना जीवन।
स्थूल व्रतों का पालन करना, अपना शांत स्वच्छ कर मन॥

अगर किसी की बहू बनो तो, सास-ससुर का रखना ध्यान।
देवर, जेठ, ननद, जेठानी, सबका करना अति सम्मान॥

सबसे मिल कर ही रहना तुम, संयुक्त रहे जिसमे परिवार।
पत्नी ही तो माता बन कर, करती है कुल का उद्धार॥

भाग्य-योग वैधव्य अगर हो, उस जीवन का क्या व्यवहार।
अच्छी तरह मुझे बतलाये, जीवन के यह चार प्रकार॥

इनमें से मेरी इच्छा है, ब्रह्मचर्य व्रत लेने की।
'चन्दन' नहीं किसी का लेना, बात सिर्फ़ है देने की॥

सखियों का प्रश्न

सभी बनें यदि ब्रह्मचारिणी, क्या होगा दुनिया का हाल ?
बस न सकेगी फिर यह दुनिया, इसका भी तो करो खयाल॥

वसुमती का उत्तर

ब्रह्मचर्य ले लेंगी सारी, हुई न होगी ऐसी बात।
ब्रह्मचर्य व्रत को जो प्रस्तुत, उसका प्रथम दीजिये साथ॥

ब्रह्मचर्य व्रत जो पालूंगी, कर पाऊंगी धर्म-प्रचार।
आप न करना, शिक्षा देना, उसको कहते मिथ्याचार॥

सखियों का दूसरा प्रश्न

साहस ज्ञान अपूर्व आपका, देखा सुना सभी ने आज।
यदि सम्भव कर पाई ऐसा, ऋणी रहेगा सदा समाज॥
प्रश्न दूसरा फिर है उठता, क्यों चिन्ता में बैठीं मग्न?
हमने आकर किया आपका, बातों द्वारा चिन्तन भग्न॥

स्वप्न की सूचना

सखियों की सुन मोहक बातें, राजकुमारी बोली है।
बोली है क्या मानो मुख में, मिश्री उसने घोली है॥
"सोच रही थी मैं, तो कुछ ही, तुमने छेड़ा और प्रसंग।
सोचो समझो सीखो सखियो! सच्चा क्या जीने का ढंग?
आज रात को मैंने सपना, देखा एक विशेष प्रकार।
'चम्पा' डूबी दुःखोदधि में, मेरे द्वारा फिर उद्धार॥
इसको बुरा कहा जाए या, भला कहा जाए बोलो।
सुख-दुख का मिश्रण है इसमें, बुद्धि-तराजू पर तोलो॥

'चम्पा' डूवेगी इसका तो, मुझे हो रहा दुःख महान।
मेरे द्वारा उद्धृत होगी, समाधान यह शान्ति-निधान॥"

सखियों का पुनः विनोद

कहा सखी ने फिर हंस करके, सही अर्थ मैं वतलाती।
सपने आते रहते हैं जब, उमर सयानी हो जाती॥

सुख में पली-पुसी कन्याएं, शीघ्र प्राप्त करतीं यौवन।
अन्य लड़कियों से पहले ही, चंचल होता उनका मन॥

अभी यहां से मैं जाती हूँ, रानी जी से' कहकर वात।
वहुत शीघ्र ही करवा देंगी, वसुमति! तेरे पीले हाथ॥

फिर सपने कैसे आएंगे, कैसे अर्थ लगाएंगी?
कैसे सोए हुए जगत को, दे उपदेश जगाएंगी?

सखियों को उलाहना

अभी कहा था सुना नहीं क्या, मैं न विवाह कराऊंगी।
फिर क्यों व्यर्थ वनाती वातें, मैं अव उठना चाहूंगी॥

जो कहना हो वह कह देना, मैं न रोकने आऊंगी।
जव मेरे से पूछेगी मां, मेरे भाव वताऊंगी॥

चली गई जब सखियां सारी, राजसुता बैठी एकान्त।
किसी विषय के चिन्तन के हित, वातावरण चाहिये शान्त॥
चित्त शान्त हो स्थान शान्त हो, समय शान्त हो आत्मा शान्त।
शान्त सुखों का अनुभव होता, 'चन्दन' कहता सत्यनितान्त॥

'वसुमती' का निर्णय और वीणा-वादन

'मुझे सूचना देने को ही, आया है यह सपना सत्य।
मेरे हाथों से होना है, कोई उच्च उच्चतम कृत्य॥
'चम्पा' का उद्धार आत्मबल- द्वारा ही होगा सम्भव।
वही बनाना मुझे चाहिये, सच्चा जो मेरा वैभव॥
निर्णय लेकर उठकर आई, बैठी अपने सिंहासन।
बन निवृत्त प्रसन्नचित्त से, करती अब वीणा-वादन॥

'धारिणी' और सखियां

सखियां आईं रानी जी से, कहने को अब सारी बात।
किया उचित अभिवादन सब ने, कर प्रणाम है जोड़े हाथ॥
पूछा-'कुशल सहित तो सब हो, सकुशला राजकुमारी है?'
'बोली सखियां-एक स्वप्न लख, चिन्तातुर वह भारी है॥

चम्पा डूबी दुःखोदधि में, अपने द्वारा फिर उद्धार ।'
इस पर लगी हुई है रानी ! करने को अब अर्थ-विचार ॥

रानी बोली-सचमुच में यह, सपना अच्छा आया है ।
होगा पुर-उद्धार सुता मे, सपने ने बतलाया है ॥

"सखियां बोलीं-हमने इसका, यही लगाया सीधा अर्थ ।
तब ही ऐसे सपने आते, हो जाती जब उम्र समर्थ ॥
इसीलिये तो कन्याओं का, कर देते हैं शीघ्र विवाह ।
सब ही मान लिया करते हैं, विद्वानों की नेक सलाह ॥
अर्थ लिया जाता है अपनी- अपनी इच्छा के अनुकूल ।
वैसा ही तो किया आपने, इसमें कौन आप की भूल ॥
बतलाया जब उसे अर्थ यह, उसने उत्तर साफ दिया ।
"मुझे विवाह नहीं करवाना, निर्णय है यह अटल लिया ॥
ब्रह्मचर्य का पालन करती, ऋण से मुक्त बनूंगी मैं ।
नहीं श्वसुर-गृह का ऋण लेकर, ऋण से युक्त बनूंगी मैं ॥"

सखियों से सुन कर पुत्री की, मनोभावना बिल्कुल स्पष्ट ।
हुई धारिणी रानी तब तो, मन ही मनमें अति सन्तुष्ट ॥

वैवाहिक जीवन को वसुमति, कर सकती है कब स्वीकार।
अच्छा होगा हम सब मिलकर, सोचें करें उसी अनुसार ॥'

सखियों ने अब ली विदा, कहकर सारी बात।
'चन्दन' अब आगे सुनें, शुभ चरित्र अवदात ॥

'धारिणी' और 'वसुमती'

गई 'धारिणी' रानी अब तो, राजसुता के पास स्वयं।
काम तभी पूरा होता है, जबकि होता नहीं अहं ॥

मां को आते देख सुता ने, सम्मुख जाकर किया प्रणाम।
आशीष लिये फिर पूछा उसने, मेरे लायक क्या है काम ?

दर्शन दिये यहां आकरके, अहो भाग्य ! हैं मेरे आज।
मां से खुलकर बातें होतीं, नहीं लड़कियां करतीं लाज ॥

कुशल पूछने आई हूं मैं, सम्मति लेने को फिर एक।
चिंतित कैसे हुई रात को, अच्छे सपने को भी देख ?

यद्यपि 'चम्पा नगरी' को तो, दुःख देखना देखा है।
उद्धार हाथ से तेरे होगा, अटल भाविनी रेखा है ॥

आज रात को बात चली थी, तेरे पूज्य पिता जी से।
करें विवाह शीघ्र अब तेरा, किसी योग्यतम साथी से ॥

तेरी इच्छा जानी जाए, ऐसा दिया मुझे आदेश ।
जैसा तुम बोलोगी वैसा, पहुंचा दूंगी मैं सन्देश ॥"

"श्रेष्ठ कार्य मेरे से होगा, उससे नाम आपका है ।
माता ! मेरे में जो कुछ है, माता और बाप का है ॥
एक ओर आप चाहतीं, मेरे से हो ऊंचा काम ।
और दूसरी ओर पिता जी, लेते करपीड़न का नाम !!
मुझे आपने ही बतलाया, ब्रह्मचर्य सब से उत्तम ।
उसे पालने की न शक्ति हो, तभी विवाह कराना तुम ॥
मेरी आत्म-शक्ति के ऊपर, नहीं आपको क्या विश्वास ?
अगर किसी ने ग़लत बताया, अतः पूछने आई पास ?"

"नहीं किसी ने ग़लत बताया, अविश्वास का स्थान नहीं ।
अपने बच्चों का होता है, मात-पिता को ध्यान सही ॥
तेरे पूज्य पिता जी ने तो, कहा जानलो उसका चित्त ।
तदनुसार हम सब बरतेंगे, समझ सुता! न हमें अमित्त ॥
फिर भी सुनलो और समझलो, ब्रह्मचर्य व्रत है दुष्कर ।
सावधि नहीं, किन्तु तुम लेती- ब्रह्मचर्य व्रत जीवन भर ॥
लेकर व्रत को भंग न हो वह, रखना होता पूर्ण विवेक ।
अच्छा है लेने से पहले, अपने को लो पूरा देख ॥

अपने को जो पूरा तोले, बोले मुखसे पीछे बोल।
रहे सुमेरु समान निरन्तर, अपने व्रत में वहाँ अडोल ॥
उसका ही व्रत लेना सार्थक, उसका ही है जीवन धन्य।
करे न समता अपने में भी, उस मानव से कोई अन्य ॥

इस पथ पर पग पीछे धरना, करली पहले पूर्ण विचार।
जिसको समझ रही हो सीधी, राह बहुत ही है दुश्वार ॥

ब्रह्मचर्य का, कर पीड़न का, नहीं हमारा है अनुरोध।
तेरी इच्छा पर निर्भर है, करवाती मैं केवल बोध ॥
दोनों में से चुनने का तो, काम तुम्हारा है बेटी!
जब तक निर्णय नहीं सुनाती, तब तक मैं भी हूं बैठी ॥

"पुत्री बोली—"किसी एक का, नहीं करूं जो अभी चुनाव।
मुझे देखने दो मेरे ही, दिल के और उतार-चढाव॥
अभी प्रतिज्ञा कर लेने से, बन्धन में बंध जाऊंगी।
बिना विचारे कुछ भी करके, मैं पीछे पछताऊंगी ॥"

अच्छा! अब मैं जाती बेटी! सदा शुभेच्छा तेरे साथ।
तेरे भावी जीवन की है, सारी तेरे ऊपर बात ॥

किया प्रणाम विनय से, मां का- पाया है शुभ आशीर्वाद।
'चन्दन' ज्ञान-विवेक पूर्ण है, मां-बेटी का शुभ सम्वाद॥

अन्तिम निष्कर्ष

रानी ने अब नृपति से, कहदी सारी बात।
क्योंकि होता है सदा, इतना अपने हाथ॥

राजा बोला—आग्रह करके, कैसे ब्याह रचाऊं मैं
सम्मति होने से ही अपना, अगला क़दम उठाऊं मैं॥

स्थगित होगया इसीलिये ही, राजसुता का अभी विवाह।
स्वप्न सत्य होने वाला है, देखो आगे उसकी राह॥

कवि की कलम

चाहे कोई क्यों न हो, कर्म सभी के साथ।
'चन्दनबाला की सुनो, सज्जन सच्ची बात॥

किसने, कितने, किसतरह, कहो उठाये कष्ट।
'चन्दनबाला' की कथा, देखो करती स्पष्ट॥

राजा-रानी पूछते, करदें तेरा व्याह।
प्रकृति की कुछ और ही, लेकिन बुरी निगाह॥

नृप-कन्या पर इस तरह, आती विपदा घोर।
लेकिन चल सकता नहीं, यहां किसी का ज़ोर॥

कष्ट उठाए 'वीर' ने, दीक्षा के पश्चात्।
'सती चन्दना' की हुई, कष्टों मे शुरुआत॥

सपने द्वारा होगया, भावी का संकेत।
'चन्दनवाला' होगई, जिससे अधिक सचेत॥

नहीं कष्ट को टालिये, सहिये उसे सहर्ष।
सज्जन!स्थापित कीजिये, कोई उच्चादर्श॥

कर्म टालने की नहीं, कहीं किसी में शक्ति।
निश-दिन करिये अधिकतर, कष्ट-काल में भक्ति॥

रोने-धोने से नहीं, मिट जाते हैं कष्ट।
अत:कभी मत कीजिये, आत्म-शक्ति को नष्ट॥

समता से सह लीजिये, उदयकाल के कर्म।
देखो धर्म बता रहा, जीवन का यह मर्म॥

कर्म उदय हैं जीव के, मिलते अन्य निमित्त।
क्रोध कभी मत कीजिये, अपना स्थिर कर चित्त॥

'प्रथम चरण' में रख दिया, 'चन्दन' सुख का चित्र।
चरण दूसरे में सुनो, दुखमय चरित पवित्र!!

२ दूसरा चरण

पाप का बाप—लोभ

'चन्दनवाला' चरित का, चरण दूसरा देख ।
'चन्दन मुनि' की लेखनी, लिखती साथ विवेक ।।

वतलाया 'अरिहन्त' ने, लोभ नरक का द्वार ।
लोभी मानव का नहीं, हो सकता उद्धार ।।

लोभ पाप का बाप है, कहते सारे साफ़ !
प्रायः होते लोभ से, जितने होते पाप ।।

क्रोधादिक करते यहां, एक-एक गुण नाश ।
होता लेकिन लोभ से, देखो सर्व प्रणाश ।।

जितने भी अपकृत्य हैं, वे हो जाते कृत्य ।
निश-दिन होता है नया, लोभी नर का नृत्य ।।

तन की तृष्णा तनिक है, तीन पाव या सेर।
लेकिन मन के सामने, तुच्छ स्वर्ण के ढेर॥

दुनिया के इतिहास में, लिखे गये जो पाप।
देखो उन पर है लगी, महा लोभ की छाप॥

ऐसा क्यों होता यहां, किससे करें सवाल?
किया लोभियों ने सदा, 'चन्दन' बुरा हवाल॥

अपरिग्रह व्रत का दिया, इसीलिये उपदेश।
जिस मे सारा मिट सके, महा लोभ का क्लेश॥

राजाओं के लोभ से, हुए बड़े अन्याय।
कोई हुए न कारगर, सीधे सरल उपाय॥

'वाहुवली' 'भरतेश' का, हुआ भयंकर युद्ध।
पाण्डव कौरव क्यों लड़े; जग में कथा प्रसिद्ध॥

किया 'कंस' ने किसलिये, 'उग्रसेन' को बन्द?
'चन्दन' केवल लोभ का, चलता है छल-छन्द॥

कौशांवी की सीमा

'चम्पापुर' की 'कौशांवी' की, सीमा लगी हुई थी साथ।
नहीं आज तक हुई लड़ाई, कभी उठी न कोई बात॥

बात आज भी नहीं उठी पर, उठा लोभ का नंगा भूत।
जालिम लोभ-भूत की होती, बड़ी कलुष काली करतूत॥

राजाओं को असन्तोष की, शिक्षाएं दी जाती थीं।
जहां-तहां से इधर-उधर से, जमीं दबा ली जाती थी ॥

जो कर सकता राज्य का, जितना भी विस्तार।
समझो सचमुच हो गया, उसका तो निस्तार ॥

कौशाम्बी का राजा शतानीक

नगरी 'कोशाम्बी' का राजा, 'शतानीक' था जिसका नाम।
'दधिवाहन' का साढू होता, उससे उसका उलटा काम ॥

'दधिवाहन' के 'शतानीक' के, था स्वभाव से भेद महान्।
सन्तोषी था एक, दूसरा- भारी लोभी था बेईमान ॥

मेरे द्वारा नहीं किसी को, नहीं किसी से मुझको कष्ट।
होने पाये, 'दधिवाहन' यों, कहता भी करता भी स्पष्ट ॥

'शतानीक' को राज्य-वृद्धि का, लगा हुआ था भारी रोग।
इसीलिये उससे डरते थे, आस-पास के सारे लोग ॥

विग्रह खड़ा किया करता था, करता रहता लूट-खसोट।
अपनी स्वार्थ-सिद्धि हो जाये, भले किसी को पहुंचे चोट ॥

सकल राज्य का, सकल प्रजा का, राजा ही होता भोक्तार।
गाय समान प्रजा होती है, राजा होते हैं दोग्धार ॥

मेरा सुख ही मुझे चाहिये, औरों से मुझको क्या काम।
मन से, भय से, चाहे जिससे, झुककर मुझकों भरो सलाम
सच्चा, झूठा चाहे जैसा, यशोगान हो बस मेरा।
केवल एक उजेरा मैं हूं, बाकी दुनियां अन्धेरा॥

बुरे राजा की भली रानी

'शतानीक' भूपति की रानी, 'मृगावती' थी महासती।
शीलवती, गुणवती सती शुभ, भाग्यवती बलवती व्रती॥
सोलह सतियों के नामों में, 'मृगावती' का आता नाम।
प्रातःकाल पवित्रात्माएं, करतीं प्रतिदिनपुण्य प्रणाम॥
समय-समय पर सदुपदेश दे, सावचेत रहती करती।
मरते समय न साथ चलेगा, बेटे-पोते धन-धरती॥
जीवन ही जब क्षण भंगुर है, राज्य आपका फिर कैसे ?
सोचो शान्तमना होकर के, 'चन्दन' कहता है ऐसे॥

भले आदमी को रुचती है, कही जाय जो बात भली।
भली-बुरी का भेद न करती, मति हो जाती जब पगली॥
नहीं सुहाती सीख किसी की, उलटी राह सिधाता है।
विज्ञ जनों से-गुणी जनों से अपयश ही वह पाता है॥

'मृगावती' का औदासीन्य

हित की बातें क्यों सुनता था, क्यों देता फिर उनको मान।
सुनता वही वही आचरता, करना हो जिसको कल्याण ॥
रानी 'मृगावती' ने सोचा, मेरे वश की बात नहीं।
हाथी पागल हो जाने पर, रहता वह फिर हाथ नहीं ॥
अपने-अपने कर्मों का फल, भोग भोगते हैं प्राणी।
कितना ही उपदेश सुनावो, सभी न हो सकते ज्ञानी ॥
देख दुराग्रह इन लोगों का, दुःख मानना ठीक नहीं।
एक बार ज्यों बैये की, वानर ने मानी सीख नहीं ॥
औदासीन्य भावना लाकर, 'मृगावती' ले लेती मौन।
आत्मोन्मुखी वृत्तियां करतीं, शिक्षा देना गिनती गौण ॥

कमजोर-पत्नियां

नहीं जरूरी पति के पीछे, पत्नी को कर लेना पाप।
काजल की कुटिया में रहकर, 'चन्दन' रहना होता साफ ॥
पति अपनी इच्छा के पीछे, पत्नी को करते मजबूर।
हुकम नहीं मंजूर हुआ तो, इकदम पति हो जाते क्रूर ॥
नौबत आती मार-पीट की, हो जाता है कभी तलाक।
इसीलिये कमजोर पत्नियां, धर्म-कर्म रख देतीं ताक ॥

बुरे पंथ पर पति चलता तो, समझाना पत्नी का फ़र्ज़ ।
उसके साथ बुरा बन जाना, 'चन्दन' होता भारी मर्ज़ ॥

'शतानीक' और मन्त्री

'शतानीक' यूं गुह्य मन्त्रणा, कभी मंत्रियों से गढता ।
'चम्पापुर' पर अपना झण्डा, मैं कब देखूंगा उड़ता ?

'दधिवाहन' है धर्म-भीरु नृप, सेना भी उसकी कमजोर ।
जल्द जीत ही लेंगे उसको, अगर लगाएंगे हम ज़ोर ॥

बहुत सरल है 'दधिवाहन' पर, कर लेना अपना अधिकार ।
वही यशस्वी होता है नृप, जो करता शासन-विस्तार ॥

भूपति डरते रहे युद्ध से, तो क्षत्रिय होंगे बेकार ।
रण छिड़ने से खोले जाते, शस्त्रों के भारी भण्डार ॥

युद्ध कला दिखलाने का बस, होता एक यही अवसर ।
'युद्ध नहीं हो—युद्ध नहीं हो', चिल्लाते हैं कायर नर ॥

राष्ट्र जाग उठता है सारा, लड़ा जा रहा हो जब युद्ध ।
उठते ही तूफ़ान भयंकर, जैसे सागर होता क्षुब्ध ॥

जीत हमारी होगी निश्चित, आती एक यही आवाज़ ।
देशवासियो ! रखलो अपनी, प्यारी मातृभूमि की लाज ॥

माता अपने लाल सौंपती, सोहागिन देती सोहाग।
युद्ध बिना दीखेगा कैसे, धरती के प्रति जो अनुराग॥

धन वाले धन देते, देते- वीर पुरुष प्राणों का दान।
जीते जी, अथवा मरने पर, पाते और अधिक सम्मान॥

बहुत काल से 'कोशाम्बी' का, सोया पड़ा हुआ है खून।
किससे छेड़ें? कैसे छेड़ें? छेड़ें युद्ध घड़ो मज़मून॥"

राजा 'शतानीक' की वाणी– सुन कर पूरा छाया जोश।
राजा यथा प्रजा होती है, इसमें मन्त्री का क्या दोष॥

मन्त्री बोले—बहुत ठीक है, छेड़ा जाए कल ही युद्ध।
मूलपाठ, छाया, टीका, अवचूरि, चूर्णि है टब्बे शुद्ध॥

राजा हों तो ऐसे ही हों, बल जागृति का दे सन्देश।
सेना को दे दिया गया है, सीमोल्लंघन का आदेश॥

निष्कारण संग्राम

निष्कारण संग्राम छेड़ना, होता है भारी अपराध।
'शतानीक' को किन्तु हुआ है, देखो बहुत बड़ा उन्माद॥
'हमें तुम्हारा राज्य चाहिये, और नहीं है नया विरोध।
जैसे मनवाता हठ लेकर, अपनी बातें बाल अबोध॥

सीमाओं में घुसकर सेना, लगी मचाने अति उत्पात।
सीमा रक्षक दल सेना को, रोक न पाया हाथों हाथ॥
छोड़ चौकियां भागे रक्षक, जनता हुई अधिक संत्रस्त।
त्राहि-त्राहि की आवाज़ों से, शान्ति हो गई बिल्कुल ध्वस्त॥
चम्पापुर-पति लगा सोचने, यह तो है वचनों का भंग।
बिना सूचना दिए अकारण, 'शतानीक' ने छेड़ा जंग॥
छुटपुट हमले करती सेना, जनता को करती हैरान।
'दधिवाहन' की सेना आये, जनता यही लगाती ध्यान॥

'दधिवाहन' की सभा

'दधिवाहन' ने सभा बुलाई, हुए उपस्थित मन्त्री लोग।
'शतानीक' को हुआ दीखता, निष्कारण लड़ने का रोग॥
'शतानीक' साढू है मेरा, और संधि भी उसके साथ।
क्यों चढ़ आया 'चम्पापुर' पर, सारे यही सोचिये बात॥
उचित कार्यवाही करने की, सलाह कीजिए आप सभी।
जिससे दुष्ट दुराग्रह विग्रह, हो जाता हो साफ़ अभी॥

परराष्ट्र सचिव

राजदूत के द्वारा सूचन, हमें होगया पहले प्राप्त।
सूचित सेना-मन्त्री को कर, किस्सा हमने किया समाप्त॥

राजा दधिवाहन की सभा

सेना सचिव

'शतानीक' नृप अभी चाहता, 'चम्पापुर' पर भी अधिकार।
उसका उत्तर देने को है, अपनी भी सेना तैयार ॥

प्रधान सचिव

कारण सूचित करता हम को, युद्ध घोषणा भी करता।
दूत भेज कर कहला देता, करता कभी न आतुरता ॥
नहीं समस्या सुलझाते हम, तो सीमा में घुस आता।
न्याय-नीति के इन नियमों को, भुला दिया है दिखलाता ॥
ऐसे घुस आया है जैसे, मानो हम सब हैं कमजोर।
स्वामी यहां नहीं है कोई, अथवा बसते हैं सब ढोर ॥
उसके दुर्भावों का हम को, मिलता रहता था संकेत।
समय-समय पर सदा नृपति को, राजन्! मैंने किया सचेत ॥
किन्तु नृपति के मन में शंका, हुई नहीं थी किसी प्रकार।
'चन्दन' सभीं सरल लगते हैं, जैसे अपने सरल विचार ॥

शांति, नम्रता देख हमारी, उसने जान लिया कमजोर।
जो होता कमजोर जोर से, वही मचाया करता शोर ॥
खैर, हुआ सो हुआ आज तक, अब सोचो आगे की बात।
कर प्रतिकार दिखा दो वीरो! 'शतानीक' को अपने हाथ॥

उक्त कथन का पूर्ण समर्थन, मैं करता हूं आज यहां।
जो ऐसे घुस आता उससे, समझौते का प्रश्न कहां ?

राजा दधिवाहन

राजा बोला—'शतानीक' को, लगी राज्य लेने की धुन।
लोभी[1] कभी न देखा करता, होने वाले गुण-अवगुण ॥

लोभी दया-पात्र होता है, उसका लोभ मिटाया जाय।
युद्ध छोड़कर पूर्ण अहिंसक, मार्ग उसे बतलाया जाय ॥

सेना सम्मुख भेजी जाए, इसका मतलब है संग्राम।
किन्तु युद्ध से होने वाले, होते बहुत बुरे परिणाम ॥

युद्धकाल में भय ही भय का, वातावरण जायगा व्याप्त।
जान-माल की क्षति खटकेगी, अगर हो गया युद्ध समाप्त॥

जीत-हार का प्रश्न एक है, हिंसा का है एक सवाल।
मानव संहृति का कर लेना, लेकिन हमको अभी खयाल॥

राज्य उसे दे दिया जाय सब, ऐसे यदि टलता हो युद्ध।
बड़ा प्रसन्न होऊंगा इससे, हृदय अगर हो जाए शुद्ध ॥

१, अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धु',
कामातुराणा न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा,
क्षुधातुराणां न बलं न बुद्धिः।

लड़ करके क्यों करवाऊंगा, प्रजजनों का मैं नुकसान।
विजय हमारी ही होगी यह, अपना केवल है अनुमान ॥
नहीं लाभ होगा लड़ने से, हानि-हानि हो लगती है।
विजय प्राप्ति के वाद अहं की, देखी आग सुलगती है ॥

प्रधान मन्त्री

आवश्यकता पड़ने पर ही, हम को करना होता युद्ध।
लिखा हुआ शास्त्रों में देखो, धर्म युद्ध होता है शुद्ध ॥
हम करते आक्रमण किसी पर, तो हम दोषी कहलाते।
लड़ने वाले के आने पर, हम भी लड़ने को जाते ॥
प्रजाजनों की रक्षा के हित, हम तलवार उठाते हैं।
ऐसा करके राष्ट्र धर्म या, क्षत्रिय धर्म निभाते हैं ॥
क्षत्रिय लोग किया करते हैं, रण में मरने का आह्वान।
रण में लड़ते-लड़ते मरना, माना एक बड़ा सम्मान ॥
मातृ-भूमि की रक्षा करते– करते दिये जाएं जो प्राण।
उन लोगों को लेने आते, स्वर्गलोक से बड़े विमान ॥

नहीं शोभती राज्य-त्याग की, बात जवां से करना ही।
मरने से क्या डरना होता, एक वार तो मरना ही ॥

राजा दधिवाहन

'दधिवाहन' नृप बोला बिल्कुल, राजनीति का है यह धर्म ।
समझ लीजिये ज़रा शान्ति से, मेरे कहने का भी मर्म ॥
केवल राजनीति से जीवन- शान्ति नहीं पाई जाती ।
इसीलिये ही राजनीति में, धार्मिकता लाई जाती ॥
वही मार्ग अपनाया जाये, जिससे सभी सुखी हों शान्त ।
स्वार्थ-बुद्धि से आत्म शुद्धि का, पान्थ अधिक हो जाता भ्रान्त॥
मैंने जो कुछ कहा आप से, कायरता से नहीं कहा ।
युद्ध किसी से किया जाय यह, मुझ से जाता नहीं सहा ॥"

प्रधान सचिव

'शतानीक' के सम्मुख जितनी, दिखलाओगे नरमाई ।
जितना अभी बना है उससे, अधिक बनेगा अन्यायी ॥
अन्यायी को उचित समय पर, दिया नहीं जाता जो दण्ड ।
कैसे रह सकती है अपनी, राज्य व्यवस्था शान्ति अखंड॥
दुश्मन जहां कहीं भी देखो, वहीं ठीक कर डाला जाय ।
सुख-समता से रहने-जीने- का है अच्छा यही उपाय ॥

युद्ध नहीं करने की बातें, मुझे नहीं बिल्कुल भातीं ।
धार्मिकता भी हमें न ऐसी, कायरता तो सिखलाती ॥

शीघ्र घोषणा करो युद्ध की, नहीं मन्त्रणा को है वक्त ।
देश राष्ट्र भक्तों को देखो, इकदम लगा उबलने रक्त ॥
सेना खड़ी प्रतीक्षा करती, लड़ने का कब हो आदेश ।
आप समझलो सही परिस्थिति, कहा जाय क्या और विशेष ॥

राजा दधिवाहन

राज्य-त्याग की बात आपको, कायरता लगती मेरी ।
शूरवीरता समझ रहे हैं, बजवाने में रण - भेरी ॥
अच्छा ! पहले उससे पूछो, चढ़ करके क्यों आया है ?
कही किसी ने इसको उलटा- मुलटा क्या समझाया है ?
केवल अनुमानों पर लड़ना, मुझे नहीं जंचता है ठीक ।
न्याय धर्म की प्रिय बातों से, जाकर उसे दीजिए सीख ॥
अगर ध्यान में आजाएगी, उसको अपनी भारी भूल ।
युद्ध नहीं करने की बातें, पड़ जाएंगी फिर अनुकूल ॥
इतने पर भी टला न आहव, तो हम पुनः विचारेंगे ।
सोच-समझ कर युद्ध क्षेत्र में, 'चन्दन' सैन्य उतारेंगे ॥

प्रधान सचिव

अगर पूछने जायेंगे हम, इसका उलटा होगा अर्थ ।
उचित बिलम्ब नहीं कहलाता, हो सकता है बड़ा अनर्थ ॥

अपनी सेना शिथिल बनेगी, उसमें फैलेगा उत्साह।
'अंगदेश' की 'चम्पापुर' की, जनता फिर होगी गुमराह॥

राजा दधिवाहन

समझाने का उद्यम करना, बुरा नहीं कहलायेगा।
अनुचित उचित उसे हमको फिर, हरइक सूत्र बतायेगा॥
'दुर्योधन' को समझाने के- लिए गए थे गिरधारी।
नहीं मानने पर ही छेड़ी- गई लड़ाई थी भारी॥

प्रधान सचिव

मन्त्री बोला हे प्रभो! नहीं नाथ पर नाथ।
कर देखो जो आपको, सही सूझती बात॥

राजा दधिवाहन-

मैं खुद जाऊंगा वहां, हो घोड़े असवार।
समझाऊंगा यत्न से, उसको बारम्बार॥

प्रधान सचिव

देख अकेला आपको, कर लेगा वह बन्द।
इसका पहले कीजिये, स्वामिन्! पूर्ण प्रबन्ध॥

राजा दधिवाहन—

केवल भ्रम है आपको, मुझे पूर्ण विश्वास ।
मुझको करने दीजिये, अब तो सत्य प्रयास ॥

अहिंसा का प्रयोग

सभा विसर्जन हो गई, निर्णय अपना देख ।
'दधिवाहन' का देखिये, 'चन्दन' यहां विवेक ॥
रक्तपात को टालने, कितने स्वच्छ विचार !
राज्य त्यागने के लिये, 'दधिवाहन' तैयार ॥
राज्य त्याग पद त्याग का, लोभ त्याग का मित्र ।
चित्र सामने आ रहा, अद्भुत और पवित्र ॥
मन्त्री गए सभी अपने घर, राजा हुये अश्व असवार ।
तिलक लगाया पुत्री ने तो, किया प्रिया ने भी सत्कार ॥

जनता का ऊहापोह

चला अकेला देखो जाता, जनता करती विविध विचार ।
सभी समान कहाँ से होंगे, मुक्ति नहीं, यह है संसार ॥

अब क्या होगा ? संशय ने यों, घेर लिया जनता का चित्त ?
समझाने से कब बुझते हैं, लोभी द्रोही नर के पित्त ॥

राजा को यह क्या सूझा है, चला शत्रु को समझाने ।
सुलझाने को 'गया' गया है, अथवा उल्टा उलझाने ?

कोई बोला—देखो धीरज- रखो अभी नृप आएंगे ।
बुरे-भले जो जैसे होंगे, समाचार आ जाएंगे ।

रक्त-पात रुक जाए ऐसी, धर्म-भावना नृपति की ।
लड़ने वालों ने ही अपनी, और प्रजा की दुर्गति की ॥

बालक, युवा, वृद्ध, लोगों में, अबलाओं में फैला भय ।
कौन पराजय पाता है, ले- जाता देखो कौन विजय ॥

न्यायी नर की जीत हमेशा, होती ऐसा सुनते हैं ।
किन्तु आजकल धूमिल सतयुग, इसीलिये शिर धुनते हैं ॥

पापी मौज-मजा करते हैं, धर्मी-न्यायी दुख पाते ।
'दधिवाहन' पर 'शतानीक' ज्यों, निष्कारण ही चढ़ आते ॥

इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा, झगड़ा किया न कोई भी ।
नरपति का साढू है 'चन्दन', नहीं सुना विद्रोही भी ॥

फिर भी लोभी बनकर चढ़कर, आया लेने को अधिकार ।
इसीलिये अन्यायी है यह, इसीलिये इसको धिक्कार ॥

आखिर अन्यायी हारेगा, ऐसा हम को दृढ़ विश्वास।
जनता की वातों से पड़ता, धर्म-कर्म पर पूर्ण प्रकाश॥

'शतानीक' का शिविर

'शतानीक' के शिविर में, पहुंचा पृथ्वीपाल।
'दधिवाहन' को देखकर, करता शत्रु खयाल॥

आया मेरी शरण में, डर करके भूपाल।
मेरे तेज-प्रताप का, उठा वड़ा भूचाल॥

'दधिवाहन' वोला-सुनो, हुई कौन-सी वात ?
लड़ने को आये यहां, रखा हमें अज्ञात॥

नहीं हमारी ओर से, हुई आज तक भूल।
फिर क्यों निष्कारण उठा, युद्ध जन्य वावूल ?

न्यायोचित तो है नहीं, ऐसा करना काम।
आखिर है इस वात का, वड़ा वुरा परिणाम॥

चला आ रहा आप से, पूर्ण मधुर सम्वन्ध।
रखिये और उदारता, इस में है आनन्द॥

मैं आया हूँ पूछने, कहिये कारण स्पष्ट।
जिससे जनता का टले, राजन् ! भारी कष्ट॥

'शतानीक' उवाच

न्याय पूछने का नहीं, हे नरपति ! अब वक्त ।
मेरी सेना मांगती, 'चम्पापुर' का रक्त ॥
राज्य बढ़ाना न्याय है, बाक़ी सब अन्याय ।
युद्ध सिवा कोई नहीं, इसका अन्य उपाय ॥
जो जीतेगा युद्ध में, वह भोगेगा राज ।
डरते रहते युद्ध से, कायर के सरताज ॥

'दधिवाहन' उवाच

आये हो यदि लोभ वश, लड़ने खातिर युद्ध ।
क्या ऐसे ही युद्ध को, कहते शुद्ध - विशुद्ध ?
युद्ध जन्य परिणाम पर, करिये ज़रा विचार ।
थर्रा उठती मेदिनी, मचता हाहाकार ॥
सींची जाए सलिल से, धरती देती धान ।
सींची जाए रक्त से, देती अति नुक्सान ॥

'शतानीक' उवाच

"धर्म ढोंगियों के लिये, छोड़ा है सन्तोष ।
लेकिन राजा के लिये, युद्ध सदा निर्दोष ॥

उर में साहस वीर्य वल, हाथों में तलवार।
'चम्पानगरी' पर मुझे, करना है अधिकार॥
अगर आप में शक्ति है, हो जाओ तैयार।
शक्ति नहीं है तो करो, आधिपत्य स्वीकार॥
दोनों में से एक भी, अगर नहीं मंजूर।
जंगल में भग जाइये, 'शतानीक' से दूर॥"

'दधिवाहन' ने देखकर, अपना यह अपमान।
सोचा-सचमुच में हुआ, आने से नुक़सान॥

'दधिवाहन' के कठिन व्यथा

ऐसे अवसर पर ही होती, कठिन परीक्षा नरवर की।
झंझावातों से न उखड़तीं, जड़ें सुदृढ़तम तरुवर की॥
उत्तेजित होने से होने- वाला नहीं यहां पर काम।
काम वही अच्छा है जिसका, आखिर अच्छा हो परिणाम॥
मेरे आदेशों पर जनता, कट-बढ कर मर जाएगी।
अगर विजय भी हुई हमारी, क्या आत्मा तर जाएगी?
लड़ना उचित नहीं लगता है, 'शतानीक' है बलशाली।
लड़ने से मिट जायेगी यह, 'चम्पापुर की खुशहाली॥

आधिपत्य स्वीकार करूं तो, करना होगा अत्याचार।
'शतानीक' का लोभ बुझाने, लादूं नए करों का भार॥

नाम मात्र का राजा होकर, रहूं सदा इसके आधीन।
ऐसा जीवन जीने से मैं, हो जाऊंगा धर्म-विहीन॥

इन दोनों से यह अच्छा है, भग जाऊं जो मैं वन में।
प्रजा शान्ति से जीएगी इस- 'शतानीक' के शासन में॥

स्वेच्छा से राज्य त्याग

ऐसा सोच कहा भूपति ने, होते हुए अश्व असवार।
अच्छा, अब से आप कीजिए, 'चम्पा' पर अपना अधिकार

पुत्र नहीं है मेरे मेरा- राज्य कौन सम्भालेगा।
ऐसा सोचा करता था यह, चिन्ता कोई टालेगा?

अच्छा किया आपने आकर, मुझे बनाया चिन्ता-मुक्त।
'चम्पा' पर अधिकार आपका, 'चन्दन' इसीलिए उपयुक्त॥

वनगमन और सूचना

इतना कहकर 'दधिवाहन' नृप, वन की ओर चले जाते।
मुख्य सचिव से समाचार यह, साथ किसी के पहुंचाते॥

युद्ध न करना, रहना सुख में, 'शतानीक' के शासन में।
राज्य त्यागकर मैं जाता हूँ, 'चन्दन' 'दधिवाहन' वन में॥

महलों में जब गई खबर यह, मां-बेटी चकराती हैं।
महलों की छत पर से उनको, जाते हुए लखाती हैं॥
नहीं पास है घोड़ा उनके, नहीं पास में हाथी हैं।
दास पास न सेवक कोई, मित्र सखा न साथी है॥
हुए नज़र से जिसदम ओझल, नीचे दोनों जातीं हैं।
'भाग्य हुआ हा! उल्टा अपना', ऐसे मन समझाती हैं॥

'शतानीक' की क्रूरता, 'दधिवाहन' का त्याग।
निन्द्य वन्द्य है आज तक, 'चन्दन' युग्म विभाग॥
दृढ़ संस्कारों ने किया, देखो अपना काम।
नेक नाम है एक का, और एक बदनाम॥

---

१. प्रतिकूले विधौ क्रिया, सुधापि हि विषायते।
रज्जुः सर्पो भवेदाशु, बिलं पातालतां भजेत्।
तमायते प्रकाशोपि, गोष्पद सागरायते।
सत्यं कूटायते मित्र, दामुत्वेन प्रवर्त्तते।

दधिवाहन का राज्य त्याग कर वन में जाना

शुभ हो चाहे अशुभ भावना, दृढता से कर लेती घर।
उसे नहीं बदला जा सकता, 'चन्दन' सत्य यही अकसर॥

अविवाहित ही रहे 'नेमि जिन,' समझाकर हारे श्री कृष्ण।
'गजसुकुमार' चले ठुकराकर, राज्य-ग्रहण का सुनकर प्रश्न॥

पारापत की रक्षा के हित, नृपति 'मेघरथ' रहे डटे।
अपने तन का मांस दिया, पर- दृढ़ता से वह नहीं हटे॥

'भीष्म' 'विदुर' 'श्रीकृष्ण' से, कभी न माना 'दुर्योधन'।
'कालसौकरिक' को न लगा था, 'चन्दन' कोई उद्बोधन॥

'शतानीक' में इसी तरह से, राज्य-लोभ था पूरा व्याप्त।
'दधिवाहन' की शिक्षा से वह, होता कैसे कहो समाप्त॥

धर्म-भावना 'दधिवाहन' की, नस-नस में थी भरी हुई।
क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, हिंसा से, नहीं आत्मा मरी हुई॥

सत्य-अहिंसा व्रत के सम्मुख, राज्य-ऋद्धि को माना तुच्छ।
राज्य त्यागकर चला गया वन, कैसा जीवन पावन स्वच्छ!!

भरी हुई थी दया-हृदय में, भरा हुआ जनता का प्रेम।
राज्य-त्याग से करना चाहता, राजा जन-जीवन का क्षेम॥

'कौशाम्बी' को कैसे मारूं, और बचाऊं 'चम्पापुर'।
इसी भावना से राजा ने, राज्य-त्याग समझा सुन्दर॥

'शतानीक' के मनोरथ

'दधिवाहन' को 'शतनीक' ने, जाते देखा जंगल में।
सोच रहा है—मेरा आना, हुआ बड़े ही मंगल में॥
बिना लड़े ही राज्य आगया, 'चम्पापुर' का मेरे हाथ।
सकल मनोरथ फल जाते हैं, जबकि किस्मत देती साथ॥
मेरे जैसा भाग्यवान नृप, कौन दूसरा कहलाये।
सम्मुख आकर शत्रु आपका, राज्य सौंप करके जाए!!

सेनापति को बुलवा करके, खोल दिया है सारा भेद।
"खुशियां हुई बहुत ही हमको, और हुआ है भारी खेद॥
बड़े भाग्यशाली हैं नरवर! राज्य शत्रु ने सौंप दिया।
जिन्दा जाने दिया आपने, काम यही तो बुरा किया॥
शत्रु नहीं चुपचाप रहेगा, सेना लेकर आएगा।
अवसर पाकर बदला लेगा, गया राज्य लौटाएगा॥
क्षत्रिय वैर न भूला करते, लेते हैं अपना प्रतिशोध।
झुकना सीखा नहीं इन्होंने, किया किसी से अगर विरोध

सच्चा क्षत्रिय 'दधिवाहन' है, कैसे बैठेगा चुपचाप।
छोटी-सी इस ग़लती का फिर, होगा प्रभु को पश्चात्ताप॥
उसे अभी पकड़ा जाए तो, नीति धर्म के है अनुकूल।
संशोधन कर लेना स्वामिन्! अगर समझ में आये भूल॥"

सेनापति को सुना नृपति ने, दिया पकड़ने का आदेश।
अगर न पकड़ा जाए तो सिर- लाना रहने देना शेष॥

सैनिक दौड़े इधर-उधर पर, 'दधिवाहन' का मिला न नाम
खाली हाथों लौटे वापस, 'चन्दन' कोई हुआ न काम॥

लूट की छूट

'सेनापति' ने कहा नृपति से, दे दो अभी लूट की छूट।
'चम्पापुर' में भरा हुआ है, कूट-कूट कर माल अखूट॥'

"राजा बोला—युद्ध नहीं जब, लूट नहीं करवाई जाती।
बिना नीति की बात आपकी, नहीं समझने में आती॥"

"सेनापति बोला-प्रभु! सैनिक, लड़ने को तो हैं तैयार।
माल मिलेगा हमें लूट में, ऐसा रखते सदा विचार॥

लूट नहीं करवाने से तो, सैनिक सब जाएंगे फूट।
अधिक नहीं तो तीन दिनों की, दे दी जाए केवल छूट॥"

होते हुए अनिच्छा नृप ने, अच्छा कहकर मान लिया।
सेना का सम्मान किया है, 'चन्दन' अवसर जान लिया॥

'चम्पापुर' की हवा

खबर मिली लोगों को ऐसी, 'दधिवाहन' ने सौंपा राज।
लगी सोचने जनता सारी, भारी यह तो हुआ अकाज॥
'शतानीक' के नीचे रहना, मरने से भी बुरा महान।
कायर बनकर बन को भागा, 'दधिवाहन' को प्यारे प्राण॥
लड़ता, हम भी लड़ते, मरता- मरती पूरी जनता साथ।
हुआ बड़ा विश्वासघात यह, राजा 'दधिवाहन' के हाथ॥
गया यहां से समझाने को, 'शतानीक' जो नहिं माना।
'दधिवाहन' को 'चम्पापुर' में, एक बार था आ जाना॥
आकर कहता सारी बातें, सभी सोचते देते साथ।
दुलहा नहीं रहा कोई अब, रही अकेली ही बारात॥
राजकुमारी रानी की भी, चिन्ता उसको रही नहीं।
इतना बुद्धिमान था राजा, उसकी मति भी गई कहीं॥

हमें हमारी मातृ-भूमि की, रक्षा करना आती है।
सुख से जीना आता है तो, सुख से मरना आता है॥
मरना होता यहां सभी को, इसमें नहीं कभी दो राय।
कैसे? किसके लिये? कौन? क़ब? ऐसा ज्ञान अगर हो जाय॥
निर्णय यही किया सबने मिल, लड़ना 'शतानीक' के साथ।
काम हाथ में है अपने तो, लेकिन फल कर्मों के हाथ॥

प्रधान मन्त्री का वक्तव्य

सुनो सैनिको! सुनो जवानो? हमको लड़ना है संग्राम।
निकलो घर से उच्च स्वर से, मातृ-भूमि को करो प्रणाम॥
जिससे जन्मे पले-पुसे हो, जो है जीवन का आधार।
आज़ादी की रक्षा करना, है अपना पूरा अधिकार॥
जनता सारी साथ तुम्हारे, हाथ तुम्हारे रखना लाज।
साहस, शौर्य, शक्ति की वीरो! होगी पूर्ण परीक्षा आज॥
जय-जय करते निकली सेना, आई 'चम्पापुर' के बाहर।
'शतानीक' की सेना आती, लेने को अधिकार इधर॥

युद्ध और आत्म-समर्पण

'शतानीक' ने सोचा—यह तो, किस्सा है कुछ और यहां।
सीधा झण्डा फहराने की, मनः कल्पना गई कहां?

सेना लड़ने को आई है, अब लड़ करके लेना राज ।
ज्यों खुजलाया जाये दाद को, और अधिक आती है खाज॥

लड़ने का आदेश दे दिया, जमा वहीं दोनों में युद्ध ।
शत्रु सामने खड़े देख कर, सैनिक हो जाते हैं क्रुद्ध ॥

विजय-पराजय का निर्णय तो, लेने वाले नर लेंगे ।
किन्तु युद्ध में मरने वाले, परिचय अपना दे देंगे ॥

कायर नर से सुना न जाता, पढ़ा न जाता रण-वर्णन ।
रण में कैसे खड़ा रहेगा, शस्त्र खनकते हों खनखन ॥

धरा रक्त से लाल हो गई, मानो हुई क्रोध से लाल ।
मेरी खातिर मारे जाते, मेरे ही ये प्यारे लाल ॥

'दधिवाहन' की सेना थोड़ी, बहुत अधिक था लेकिन जोश
आखिर बड़ी शक्ति के सम्मुख, टिका नहीं करता है रोष ॥

आत्म-समर्पण किया सभी ने, अब तो युद्ध हो गया बन्द ।
लूट-खसूट मचेगी भारी, रक्षा का दिखता न प्रबन्ध॥

'चम्पापुर' की लूट

पुर के दरवाज़ों को तोड़ा, किया सैन्य ने नगर-प्रवेश ।
भूखा बाज पक्षियों पर ज्यों, पड़ता देखा गया हमेश ॥

लूटा जाने लगा माल सब, जो जिसके भी हाथ लगा।
मालिक छिपे कहीं घर में ही, कोई घर से दूर भगा ॥
उसे मौत के घाट उतारा, जिसने की कुछ चूं-चप्पड़।
खड़ा किनारे उसके भी तो, जड़े ज़ोर से दो थप्पड़ ॥

धन वैभव ऐश्वर्य छोड़ कर, भागे लोग बचाने प्राण।
सब कुछ प्यारा किन्तु न प्यारा, होता कोई प्राण समान ॥
सैनिक रावण-रूप हो गए, सीता सदृश 'चम्पापुर'।
लूट देखकर 'शतानीक' भी, फूला अन्दर ही अन्दर ॥
अबलाओं की इज़्ज़त पर भी, दुष्टों ने आक्रमण किया।
छूट-लूट की मिली हुई थी, उसका पूरा लाभ लिया ॥
विक्रम सम्वत उन्नी सौ चौदह- की ग़दर पढो प्यारे !
इससे भी कुछ हुए अधिक ही, होंगे हाल बुरे सारे ॥
अबलाओं का असहायों का औ- वालों दीन-अनाथों का।
'चन्दन' लिख सकती न लेखिनी, क्रन्दन ऐसी बातों का ॥

लिखा प्रसंगोपात्त यहां पर, स्वतः सभी होगा अनुमान।
किन्तु लूटने वालों के दिल, बने हुए थे शिला समान ॥
गली-गली में हाट-हाट में, भवन-भवन में कोलाहल।
सारी जनता नगर छोड़कर, कहिये कैसे जाय निकल ?

जीवित तथा अर्धमृत जन ने, देखा आंखों से वृत्तान्त ।
मरे हुए लोगों की लाशें, सोई हुई पड़ी हैं शान्त ॥
कौन मरा है कौन सम्भाले, कौन जलाए इन्हें भला ।
छाई हुई सभी के सिर पर, लूट पाट की बड़ी बला ॥
सभी सैनिकों ने जी भर के, लूटा-खोसा 'चम्पापुर' ।
'शतानीक' का रथी एक तो, पहुंच गया है अन्तःपुर ॥

महल का वातावरण

सेवक ने सन्देश दिया अब, महलों में भी आई लूट ।
अच्छा होगा आप अभी से, अगर कहीं पर जाएं ऊठ ॥
सुना 'धारिणी' रानी ने पर, भय का हुआ नहीं संचार ।
कहां भगेंगी कहां छिपेंगी, मरना होता है इक बार ॥

पुत्री ! तेरा स्वप्न यह, फलित हो रहा देख ।
लेकिन बाक़ी है अभी, उस का हिस्सा एक ॥
'चम्पा' डूबी दुःख में, बाक़ी है उद्धार ।
बेटी ! तेरे हाथ से, देखेगा संसार ॥

पुत्री ! तेरे पिता हमें तो, छोड़ गए हैं यहां अनाथ ।
आई अभी से होने वाली, भारी कष्टों की शुरुआत ॥

चाहे कुछ भी हो जाय पर, काच नहीं होता वैडूर्य।
बड़ी ज़ोर की आंधी से भी, नहीं छिपाया जाता सूर्य ॥

कष्ट-काल में ही होता है, सदा परीक्षा धीरज का।
पता न चलता कभी अन्यथा, आत्मा के बल-वीरज का ॥

जिसका धर्म जागता-जीता, उसकी बच जाती है शर्म।
प्राण जाय तो जाने देना, किन्तु न जाने देना धर्म ॥

धर्म-भ्रष्ट हो जाने पर ही, सब कुछ माना जाता नष्ट।
जिसका धर्म सुरक्षित उस पर, सभी शक्तियां हैं सन्तुष्ट ॥

हम अबलाओं से क्या होगा, कभी न करना हीन-विचार।
देख, देवियों के चरणों में, झुकता आया है संसार ॥

होना होगा वह होगा ही, डर कर कहीं न जाएं भाग।
हुआ धर्म पर अगर आक्रमण- तो देंगी प्राणों को त्याग ॥

है इतनी तैयारी अपनी, हमें नहीं है कोई डर।
हमें हमारी जगह शान्ति से, बैठे ही रहना है स्थिर ॥

डरने से कुछ काम न बनता, डरना है बेटी! बेकार।
हमें हमारे सत्य-शील का, और धर्म का है आधार ॥"

प्रभु-स्मरण शान्ति से करती, मां-बेटी बैठी ले मौन।
आगे पढो पंक्तियां इनको, लेने को है आता कौन ॥

वह नहीं, यह लूं

रथी घुसा था राजमहल में, लेने भारी-भारी माल।
सूना पड़ा खजाना सारा, कोई वहां नहीं रखवाल ॥
भाग गए थे रक्षक सारे, छिपे हुए थे इधर-उधर।
सोच रहे थे दुश्मन-दल को, पड़ती है अब किधर नजर?

हीरे लूं, लूं मोती-माणक, पन्ने नीलम लूं पुखराज।
स्वर्ण रुपये लूं, लूं पोशाकें, पल-पल बदल रही आवाज॥
लिया न जाता, ले लूं तो फिर, रखने को स्थान नहीं।
राजमहल की लक्ष्मी सम्मुख, रहा रथिक को भान नहीं॥

नहीं पीढ़ियों में भी देखा, पाना तो है कोसों दूर।
मिला देखने को लेने को, भारी किस्मत तेज जरूर ॥
इधर देखना-उधर देखता, लगी घूमने चारों ओर।
धीरे-धीरे देख रहा है, जल्दी तो करता है चोर ॥

राजमहल में सिंहासन पर, देखा बैठें रानी को।
धर्म-कर्म की शिक्षा पाती, देखा सुना सयानी को ॥
रूप देखकर इन दोनों का, रथिक होगया है हैरान।
जिसको ऐसी रानी थी वह, 'दधिवाहन' था बहुत महान॥

नहीं अप्सराएं हैं ऐसी, परियां-वरियां झूठी बात।
नहीं अधिक सौन्दर्य कहीं पर, जितना देख रहा साक्षात ॥

स्त्रीरत्नों के सम्मुख होते, रत्न सभी सचमुच पत्थर।
इनकी चरण-धूलि पर जीवन, हो सकता है न्योछावर॥
अगर मुझे कुछ लेना है तो, लेने हैं ये दोनों रत्न।
इन्हें प्राप्त करने का केवल, करना होगा मुझे प्रयत्न॥

तलवार का डर

करूं प्रार्थना चलने की तो, कभी नहीं ये लेंगी मान।
क्षत्रिय कन्याओं का होता, देखा-सुना बड़ा बलिदान॥
फुसलाकर भय दिखलाकर भी, करना है अपने आधीन।
पाकर इनको धन्य बनूंगा, इसमें कोई मेष न मीन॥
खींची है तलवार म्यान से, उठो चलो अब मेरे साथ।
रक्षक कोई नहीं तुम्हारा, तुम हो अबला दीन-अनाथ॥
मची हुई है लूट नगर में, तुम्हीं लगी हो मेरे हाथ।
यह नंगी तलवार देख लो, और समझलो सारी बात॥

'धारिणी' के विचार

जो देती उपदेश सुता को, वह भी तो है अभी अपूर्ण।
मर जाने से मेरी इच्छा, कैसे हो सकती सम्पूर्ण॥

उठकर इसके साथ चलूं तो, नहीं सुरक्षित मेरा शील।
समय सोचने का न रहा है, रथिक न सह सकता है ढील
इसके हाथों से मरने से, मरना अच्छा अपने आप।
पुत्री बड़े प्रेम से पढ़ती, मां की मनोभावना साफ़॥
शायद रथिक सुधर सकता है, सुन करके मेरा उपदेश।
अभी समय ही नहीं रहा है, जो सोचूं-समझूं सुविशेष॥
किया इशारा ही आपस में, मां-बेटी बस उतर पड़ीं।
विकट घड़ी घड़ने वाले की, छाती होगी वज्र बड़ी॥
रथिक चला दोनों के पीछे, हाथों में नंगी तलवार।
निःसंकोच हो गई दोनों, 'चन्दन' स्यन्दन में असवार॥

रथी की मनोरथ माला

रथी सोचता जाता मन में, "काम होगया मेरा सिद्ध।
नहीं चूकता कभी निशाना, झपट मारता है जो गिद्ध॥
अगर न मैं भय बतलाता तो, नहीं हस्तगत होता माल।
है तलवार धार का सारा, जितना भी यह हुआ कमाल॥
मैं सुन्दर हूँ और युवा हूं, स्त्रियां मांगती यौवन रूप॥
काम नहीं बन पाता जो मैं, होता बूढ़ा और विरूप॥
ननुनच कुछ भी किया नहीं चुप- चाप होगईं मेरे साथ।
और कहां मिल पाता इनको, मेरे जैसा सुन्दर नाथ॥

पर्दा डाल लिया है रथ पर, माया - जाल छुपाने को।
कोई भी ललचा सकता है, सुन्दरियों को पाने को॥

लाया रथिक रमणियां ऐसी, नहीं किसी को पता चले।
तभी ठीक है मेरे मन की, सोची-समझी दाल गले॥

कौशाम्बी में ले जाने से, छुपी न रह पाएगी बात।
अच्छे कामों में ही जग में, होते हैं बहुधा व्याघात॥

इसीलिये इनको ले करके, जंगल में ही जाना ठीक।
इनसे प्रेम किया जाएगा, पूर्णतया होकर निर्भीक॥

साथ आगई इसीलिये तो, अभी न आई मेरे हाथ।
हाथ तभी आई समझूंगा, जब होगी खुल करके बात॥"

ऐसे विविध कल्पना करता, दौड़ाता रथ वन की ओर।
'वसुमति' मां से शिक्षा सुनती, करती उस पर गहरा ग़ौर॥

अन्तिम और अमूल्य उपदेश

"नहीं युद्ध से होता बेटी ! कभी शान्ति का संस्थापन।
लड़ कर युद्ध सिद्ध करता है, मानव अपना पागलपन॥

पशु भी लड़ते, लड़ते मानव, दोनों में फिर क्या है फ़र्क़ ?
पशुता मानवता का देने– लायक कहां रहेगा तर्क॥

किया जाय जो मानव के हित, शस्त्रों का सुन्दर उपयोग ।
शस्त्र तभी अच्छे उपयोगी, कहते सभी सयाने लोग ॥
दुःख-कष्ट पहुंचाने को नर, अगर उठाता कर में शस्त्र ।
नंगा उसे कहा जायेगा, भले पहनने के हों वस्त्र ॥

अगर किसी को चाकू मारा, चाकू का क्या इसमें दोष ।
दोष उसी का दुरुपयोग ही, करने वाले पर अफ़सोस !!

हुई प्रजा की बड़ी दुर्दशा, अवलाओं की रही न लाज ।
अगर न होता युद्ध धरा पर, ऐसा होता नहीं अकाज ॥
युद्ध अहिंसात्मक लड़ करके, करना 'चम्पा' का उद्धार ।
प्रतिपक्षी पर विजय प्राप्ति का, जिसमें नहीं अहं संचार ॥
धैर्य बहुत आवश्यक होता, चाहे होवे वज्र-प्रहार ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाएं पर, हटने का हो नहीं विचार ॥
शत्रु समझना नहीं किसी को, प्राणि मात्र हैं प्यारे मित्र ।
त्रिकरण तीन योग से तुझको, रहना होगा परम पवित्र ॥
श्रम से, भय से डरकर अपना, नहीं अधूरा रखना काम ।
पैराग्राफ़ शुरू होता है- लगता किन्तु न पूर्ण विराम ॥
अपना रक्त बहाने को भी, रहना है तैयार सहर्ष ।
मैं अविनाशी अजर-अमर हूं, मरना रखने को आदर्श ॥

देश-दाग़ धोया जाएगा, जब हम अपना देंगी रक्त।
दोनों युद्धों में है अन्तर, अन्तर भावों का ही फ़क्त ॥
हर्ष विजय से होता है ज्यों, कष्ट पराजय से भी स्पस्ट।
किन्तु अहिंसात्मक रण में तो, रहते हैं समभाव वरिष्ठ ॥
राजकुमारी मान आपको, कभी न करना मन अभिमान
काम सभी करना हाथों से, रखना साथ काल का ध्यान
क्रोध कभी मत करना, डरना- नहीं किसी से कभी स्वयं।
भयं-भयं की मनोभावना, उत्पन्न करती महा भयं ॥
यही सत्य है यही तथ्य है, यही सार है जीवन का।
समझ गई ? सारांश स्वतः इस- क्षण के, मेरे भाषण का ॥

समझने की बात

राजसुता, माता चढ़ीं, रथिक हाथ में आज।
'चन्दन' उनके कष्ट का, करो ज़रा अन्दाज़ ॥
दुष्ट पुरुष के पास में, फंस जाए जो नार।
उसके प्यारे शील को, खतरा बिना शुमार ॥
रोती, धोती, चीखती, होती जो कमज़ोर।
देखो दोनों ने कहीं, नहीं मचाया शोर ॥
रथ में बैठी शान्ति से, देती है उपदेश।
पहले रहा अपूर्ण जो, पूर्ण हुआ सन्देश ॥

ऐसे क्षण में धर्म पर, रख दृढ़तम विश्वास।
जीना होता अति कठिन, 'चन्दन' है शावाश !!
उपदेशक की वात का, पड़ता तभी प्रभाव।
उसमें उसका हो नहीं, 'चन्दन' अगर अभाव॥
रानी जी तैयार थीं, करने को वलिदान।
मां से पुत्री को मिला, जीवन का विज्ञान॥
'चन्दन' कभी न कीजिये, इनसानों! अभिमान।
सुन करके ले लीजिए, लेने लायक ज्ञान॥

अकार से आरम्भ

माता की आकृति से ऐसा, तेज टपकता देख रही।
साहस शौर्य धैर्य की प्रतिमा, भावों से आलेक रही॥
सुनकर स्थान दे रही दिल में, माता के उपदेशों को।
रखती है सन्दूकों में ज्यों स्त्रियां कीमती वेशों को॥
विद्यार्थी शिक्षक की वातें, सुनता देकर पूरा ध्यान।
उनको स्थान नहीं देता जो, होता कभी नहीं कल्याण॥
दुःख प्रथम अपहरण हुआ है, वर्णों में ज्यों आदि अकार।
वहुत वर्ण हैं मध्य भाग में, सब से अन्तिम वर्ण हकार॥
'चन्दन' चलो लेखिनी! रथ भी, चलता है निर्जन वन में।
अपनी प्रिया वनाने को ही, रथिक सोचता है मन में॥

पर्दा उठा

रोका रथ को पर्दा खोला, बोला उतरो अब नीचे।
उतरी सती 'धारिणी' पहले, 'वसुमति' भी उतरी पीछे॥
बैठो इस तरु की छाया में, करो यहां पर कुछ विश्राम।
बहुत चले हैं बहुत थके हैं, आवश्यक तन को आराम॥

बैठ गई जब लगा देखने, नज़र गड़ा कर उनका रूप।
ज्यों प्रतिबिम्ब कांच का पड़ता, अगर दिखाई जाये धूप॥
पीने लगा रूप नयनों से; लगी सुलगने दिल में आग।
सर्फ़ पाउडर वाले जल में, 'चन्दन' ज्यों उठते हैं झाग॥
'सुमुखि! तुम्हारे नयन-शरों ने, व्यथित किया है मेरा दिल।
सहला दे अब दे आलिङ्गन, वरना जीना है मुश्किल॥
जैसा सुन्दर रूप तुम्हारा, वैसा सुन्दर करो विचार।
करो मुझे स्वीकार प्रेम से, सुखमय हो अपना संसार॥'

मूढ़ता पर मुस्कान

ऐसी बातें सुनने से तो, स्वाभाविक है आना क्रोध।
किन्तु 'धारिणी' सोच रही है, कैसा है यह बाल अबोध॥

मेरे साहस धैर्य शक्ति की, अभी कसौटी होना है।
सुनने वाला पास न कोई, रोऊं फिर क्या रोना है॥
मेरे रोने से पुत्री भी, रोएगी आंसू भर कर।
धन्य मानता रथिक आपको, जब हम दोनों को पाकर॥
बुरे मार्ग से इसे बचा कर, करना सत्पथ पर आरूढ़।
टीकाओं से जाना जाता, सूत्रों का जो आशय गूढ़॥
ऐसे सोच-विचार देखती, भरती हैं थोड़ी मुस्कान।
रथी समझने लगा दिया है, मेरे अनुनय पर ही ध्यान॥

रथिक की भ्रान्ति

स्पष्ट नहीं स्वीकृति देती हो, समझ गया इसका कारण।
उसका करूं निवारण अब ही, स्पष्टतया कर उच्चारण॥
जो भी आज्ञा आप करोगी, शिरोधार्य मैं कर लूंगा।
जहां रहोगी आप वहां पर, मैं खुद पानी भर दूंगा॥
मैं क्या, मेरे मन-वच-काया, प्राण तुम्हारे ही आधीन।
सेवा को स्वीकार कीजिये, हो जाएंगे हम फिर तीन॥

'धारिणी' की वाणी

वीर पुरुष कहलाने वाला, सेवक बनने को तैयार।
इसीलिये धिक्कार काम को, देता है सारा संसार॥

है मेरा कर्त्तव्य इसे मैं, पतित न होने दूं कातर।
दें दूंगी मैं प्राण खुशी से, शील धर्म के ही खातिर॥

बोली सती 'धारिणी रानी', सुन लो ज़रा लगा कर ध्यान।
तुम्हें तुम्हारे वचनों का भी, नहीं रहा है किंचित ज्ञान !

यही तुम्हारी वीरता ? यही तुम्हारा ज्ञान ?
वचन दिए जो आपने, उन पर भी दो ध्यान॥

ईश्वर, धर्म, अग्नि, सरिताओं, देवों का करके आह्वान।
पत्नी सिवा सभी को अब से, समझूंगा मैं बहन समान॥

शपथ भंग करने को जाते, बातें ऐसी करते हो।
भले आदमी ! परमात्मा से, आप नहीं क्यों डरते हो ?

मैं हूँ बहन तुम्हारी समझो, पत्नी हूँ 'दधिवाहन' की।
मेरी इच्छा नहीं कभी भी, पुनः-पुनः उद्वाहन की॥

क्षत्रिय-पुत्री क्षत्रिय-पत्नी, अपने प्रण पर अटल सदा।
जीवित धर्म रहेगा मेरा, मैं हो जाऊं भले विदा॥

अपने को सम्भालो पहले, पीछे करो दूसरी बात।
क्या कहते हो क्या करते हो, दिल पर रखकर देखो हाथ॥

रथिक का तर्क

बोला रथिक—ठीक कहता हूं, भाग गया नृप 'दधिवाहन'।
इसीलिये मेरे से तेरा, उचित रहेगा उद्वाहन॥

तेरे जैसी योग्य नारियां, वीर पुरुष का पाकर साथ।
सुख पा सकतीं सुख दे सकतीं, बिल्कुल उचित यही है बात॥

वीर पुरुष ही कर सकता है, ग्रहण तुम्हारे जैसे रत्न।
भाग्यशालिनी बन जाने का, करो सयानी! पुण्य प्रयत्न॥

समझाने से अगर न माना, तो देखो नंगी तलवार।
इससे अच्छा यही रहेगा, पहले ही करलो स्वीकार॥

धर्म का हिमालय

'दधिवाहन' के सिवा किसी को, मैं नहिं पति बनाऊंगी।
अडिग हिमालय की चोटी-सा, पातिव्रत्य निभाऊंगी॥

कायर है या शुद्ध वीर है, उसकी चिन्ता छोड़ो आप।
पत्नी बनने के आग्रह से, मुझको आप कीजिये माफ़॥

अर्जुन सम बलवान आप हैं, नलकूवर सम हैं सुन्दर।
अच्छा होता और अधिक आदि, दुर्भाव न होते मन अन्दर॥

सुनकर उत्तर रथी सोचता, हुआ दीखता उलटा काम ।
लेती नहीं नहीं लेगी यह, मुझको अपनाने का नाम ॥
राजमहल से रत्न न लाया, लाया वह भी बड़ा कमाल ।
लगी मुझे उपदेश सुनाने, शास्त्रों के उद्धरण निकाल !!

बड़ा क्रोध उमड़ा अन्तर में, दोनों नेत्र हो गए लाल ।
कैसे नहीं मानती हो तुम ? दिखलाता तलवार निकाल ॥
आदमियों की तरह मुझे तो, समझाया है भली प्रकार ।
नहीं अक्ल का अंश ज़रा भी, शक्ल देख भूला संसार ॥
जिसके लिये तुम्हें लाया हूँ, निश्चय पूर्ण करूंगा काम ।
बदल नहीं सकता है मुझको, चाहे खुद भी आएं राम ॥
"शक्ति सोचने की नारी में, होती नहीं" कहा है सत्य ।
उसने सुना न जाना देखा, क्या पौर्वात्य तथा पाश्चात्य ॥
तू क्या, तेरी छाया को भी, झुकते अभी बताऊंगा ।
मैं रक्षक हूँ मैं भक्षक हूँ, बल पूर्वक मनवाऊंगा ॥

तुझे मारने से पहले तो, एक बार भोगूंगा भोग ।
पीछे सोचूंगा समझूंगा, जो कुछ होगा योग्य अयोग ॥

निर्जन वन, असहाय अकेली, स्त्री भी जो न करे स्वीकार।
बार-बार धिक्कार मुझे फिर, काम लगेगी क्या तलवार ?
सुखी बनाने की इच्छा थी, बेचारी दुखियारी को।
अय तलवार ! दिखादे तेरा, चमत्कार इस नारी को॥

शक्ति का अवतार—नारी

इतनी बड़ी-बड़ी बातें सुन, रानी हुई नहीं भयभीत।
'भय से प्रीत हुआ करती है', उक्ति हो गई है विपरीत॥

बोली—वीर वही होते जो, अपना वचन निभाते हैं।
अबलाओं पर शिशुओं पर वे, शस्त्र न कभी उठाते हैं॥

इतने पर भी आप दुराग्रह, छोड़ नहीं सकते अपना।
मैं सत्पथ छोड़ूंगी इसका, देख रहे हो क्यों सपना॥

जो तलवार चलावोगे तो, आलिंगन उसका मंजूर।
देखो, जीते जी मेरे से, खड़े रहो दो हाथों दूर॥

अन्य पुरुष का स्पर्शमात्र भी, सहन नहीं स्वीकार नहीं।
मर जाने पर कुछ भी हो फिर, उसका मुझे विचार नहीं॥

चन्द्र उष्ण हो जाय, धरा में- जो धंस जाय सुमेरु शिखर।
तारे टूट गगन से सारे, धरती पर जो जांय बिखर॥

मर्यादा का उल्लंघन कर, सागर जगत डुबो डाले।
रक्षा के हित बनी हुई भी, बाड़ ककड़ियों को खाले॥

अन्धकार रवि से हो जाए, शीतल हो जाए जो आग।
अलस सदृश निर्विष बन जाए, सम्भव कभी वासुकी नाग॥

सम्भव सब कुछ हो सकता है, काम असम्भव है यह एक।
मेरे से छुड़वा दे कोई, मेरे शीलधर्म की टेक॥

रथी की उग्रता

सुनते-सुनते बात सती की, रथिक होगया भारी उग्र।
काम अधूरा देख साथ में, लगा उछलने क्रोध समग्र॥

ठहर! ठहर! जीते जी तेरा, मैं करता हूँ स्पर्श अभी।
मिट्टी में मिल जाएंगे ये, तेरे उच्चादर्श सभी॥

उद्यत हुआ पकड़ने को अथ, बलात्कार की कर इच्छा।
होनहार के आगे नर का, अहंकार होता मिच्छा॥

सोचने का समय

बोली सती—"वीर लोग क्या, करते हैं यों अत्याचार?
बलात्कार करने को भी तुम, हाय! हो गये हो तैयार?

इतना कुछ समझाया फिर भी, समझ न पाए सत्य विचार।
नाड़ी ऊंची चढ़ जाने पर, होते व्यर्थ सभी उपचार॥

किया प्रयत्न बहुत सा मैंने, नहीं सफलता प्राप्त हुई।
किन्तु अभी इस क्षण में ऐसी, इच्छा मन में व्याप्त हुई॥

करदूं आत्म-समर्पण तुमको, अथवा है क्या कोई राह।
योग्य व्यक्ति ही दे सकता है, योग्य समय पर योग्य सलाह॥

समय सोचने का दो, मुझको; शायद सम्मति जाए सूझ।
"पवडी को ही पूछ लीजिए, भरा किसी ने इसमें गूझ॥

सम्मति ले लूं परमात्मा से, जरा दूर हट जावो आप।
मुझे अकेली छोड़ दीजिए, देखो क्या होता इन्साफ़॥

बलात्कार करने का तुमको, नहीं उठाना होगा कष्ट।
अन्तिम निर्णय अभी आपके, सम्मुख रख देती हूं स्पष्ट॥"

अवकाश और विश्वास

सुनकर तेरी नम्र प्रार्थना, देता दो क्षण का अवकाश।
निर्णय ऐसा ही लेना तू, जिसपर मुझको है विश्वास

"रथी दूर हट करके बैठा, लगा सोचने मन ही मन।
स्वीकृति मिलते ही कर लूंगा, अभी-अभी गाढालिङ्गन॥

यह पत्नी मैं पति फिर होंगे, मेरे सारे सफल प्रयत्न।
नहीं किसी को मिला, मिला है- जैसा मुझको नारी रत्न" ॥
काम दुरति क्रम इसीलिये तो, बतलाते हैं ज्ञानीजन।
किस क्षण, किस जन, किस कारण से, जीवनका हो जाय पतन ॥

'वसुमति' सोचती है

राजसुता भी बैठी-बैठी, देख रही है सारा खेल।
दोनों डटे हुए हैं हठ पर, कैसे बैठेगा यह मेल।
मां ने जो उपदेश दिया था, उसको करती है चरितार्थ।
नहीं बोलकर आचरणों से, कहते जो होते गीतार्थ ॥
क्रुद्ध दृष्टि से झांक रथिक को, कर सकती है क्षण में भस्म।
सती-तेज के आगे क्षमता, रखता है क्या नर का जिस्म
चाहे तो इस रथी वीर से, लड़ सकती है मां संग्राम।
किन्तु देखना है हे भगवन्! क्या होता अन्तिम परिणाम

बलिदान की तैयारी

रथी-दूर हटते ही रानी, करती प्रभु को एक प्रणाम।
प्रभो! इसे समझाने का अब, पूर्ण होगया मेरा काम ॥

मेरे से जो समझ न पाया, उसको सन्मति देना आप।
ऐसे कहकर त्याग रही है, इच्छा युक्त अठारह पाप ॥
सागारी संथारा लेकर, पूर्ण किया है अपना ध्यान।
रानी ने तैयारी करली, देने को अपना बलिदान ॥

रथिक का प्रश्न

समय हो चुका बोलो अब किस- निर्णय पर पहुँची हो तुम ?
किसी शक्तिशाली को नारी, कभी नहीं कर सकती गुम ॥

आत्मा की आवाज़

निज आत्मा से परामर्श कर- लिया मुझे तो मिला प्रकाश।
अच्छा, उसकी आज्ञा पर ज़ो, करो आप भी कुछ विश्वास ॥
कहती आत्मा मुझको ऐसे, जिस पर रथिक हो रहा अन्ध।
अच्छा है उस तन से अपना, हटा दिया जाए सम्बन्ध ॥
दृष्ट विनश्वर अस्थिर काया, सर्व अशुचियों का आगार।
मोह-जाल में फंस कर प्राणी, मान रहा सुख का आधार ॥
अग्निशिखा पर मोहित होकर, देता है ज्यों प्राण पतंग।
कामी मोही नर का वोही, बिल्कुल एक सरीखा ढंग ॥

नरक-यातनाएं भोगोगे, नहीं हटाया जो व्यामोह।
न्याय-नीति से धर्म-कर्म मे, क्यों करने जाते विद्रोह॥

अन्तिम प्रयास

सुनकर रथिक चकित हो बोला, समय किया क्यों मेरा नष्ट।
आज्ञा दाता उस आत्मा को, क्यों न दिखा देती तू स्पष्ट?
आत्मा-परमात्मा की बातें- भूलो, मुझे करो स्वीकार।
वह कुछ भी कहता हो, मुझको- करना है तेरे से प्यार॥
छूट नहीं देती है जो तू, अभी मचाता हूं मैं लूट।
ऐसे कहकर रानी पर वह, रथिक पड़ा है मानों टूट॥

अन्तिम सांस

रथिक पहुंचने से पहले ही, जीभ खींच ली रानी ने!
रानी को पाने की कोशिश, की पागल अज्ञानी ने॥
मुख से निकली धार रक्त की, तन से निकल गए हैं प्राण।
गिरा शरीर धरा पर इसको, 'चन्दन' कहते हैं बलिदान॥
रखा सतीत्व अखण्ड आपका, किया सुना का रस्ता साफ़।
रथिक देखने लगा सती का, कैसा होता तेज-प्रताप!!

सदा धर्म के लिये मिटें जो, मरकर वनते दिव्य अमर।
हमें अहिंसात्मक वतलाया, मुनि-ऋषियों ने यही समर॥

नारी पर इससे वढ़कर क्या, आ सकता है कोई कष्ट।
धर्म बचाने के हित नारी, करती सदा स्वयं को नष्ट॥

धन्य! 'धारिणी रानी' जिस ने, धर्म वचाया नारी का।
पंजा लगने दिया न तन पर, कामी क्रूर शिकारी का॥

गौरव पूर्ण मरण

नहीं रथिक पर रोष ज़रा भी, तन पर नहीं ममत्व ज़रा।
रोम-रोम से रानी जी के, है समत्व - पीयूष झरा॥

मेरा बुरा किया है इसने, इसका वड़ा बुरा हो फिर।
ऐसा सोचा जाने से क्या, ऐसा हो जाता आख़िर?

किया रथिक ने बुरा सती का, कहिये कैसे माना जाय।
उसने अपना बुरा किया है, नहीं किसी की भी दो राय॥

सभी सुज्ञजन कहते करते, लिखते रानी के गुणगान।
नारी का सम्मान बढ़ाने, किया गया ऐसा वलिदान॥

इच्छा और अनिच्छा से भी, जिसने अपना सौंपा तन।
गौरवशाली गिना न जाता, उसका यह जीवन 'चन्दन'॥

जग की सच्ची सतियों में है, सती 'धारिणी' का शुभ नाम।
धैर्य धारिणी सौख्य कारिणी- के चरणों में करो प्रणाम ॥

चरण पर चञ्चुपात

कितनी ही सतियों ने ऐसे, सही किये होंगे बलिदान।
जिसका लिखा गया उसका ही, हम सबको है आता ध्यान ॥

किसी धर्म की, किसी जाति की, नारी सारी एक समान।
अपनी इज्जत सबको प्यारी, भारी 'चन्दन' की पहचान ॥

नहीं अमीरी और गरीबी, देती ऐसे उच्च विचार।
भारत की पावन संस्कृति में, ऊंचे भरे हुए संस्कार ॥

संस्कृति धर्म साथ में जीते, जीते आत्मा और शरीर।
कांटा चाहे लगे पैर में, लेकिन उठती दिल में पीर ॥

संस्कृति रक्षा में निहित, अपनी रक्षा साथ।
'चन्दनमुनि' की समझलो, सीधी - सादी बात ॥

चन्दनबाला-चरित का, चरण द्वितीय प्रधान।
पढ़िये 'चन्दन' चाव से, रानी का बलिदान ॥

डरी न दुःख से न करी, प्राणों की परवाह।
ऐसा लख बलिदान, न- कौन कहेगा वाह!!

इससे बढ़कर आत्मबल, नहीं दूसरा और।
'चन्दन' चतुर नरों! करो, जीवन पर कुछ ग़ौर॥

कहने-लिखने में कहीं, कभी न आता ज़ोर।
लेकिन आता ज़ोर जब, आता समय कठोर॥

शील-धर्म का देखलो, अनुपम यह आदर्श।
जिसको लिखकर लेखनी, करे प्राप्त नव हर्ष॥

भारत की यह संस्कृति, जीवन का है प्राण।
'चन्दन' महिमा[1] शील की, गाता सकल जहान॥

ऐसे अच्छे चरित लिख, 'चन्दन' मैं भी धन्य!
हुई लेखनी धन्य जो, लिखती वर्ण अनन्य॥

---

१. शौचानां परमं शौचं, गुणानां परमो गुणः।
प्रभाव-महिमा-धाम, शीलमेकं जगत्त्रये॥

'चन्दन' ऐसे चरित लिख, जागृत करें विवेक।
जिनको पढ़कर श्रवणकर, पावन हो प्रत्येक ॥

कर्म-निर्जरा के लिये, 'चन्दन' लिखो चरित्र।
सुनने वालो ! तुम सुनो, रख कर ध्येय पवित्र ॥

३ तीसरा चरण

जितने भी इस जगत में, हुए त्रिलोकी नाथ ।
'चन्दन' वन्दन मैं करूं, उन्हें विनय के साथ ॥

'चन्दन' प्रभु की वन्दना, बड़ी शक्ति सम्पन्न ।
शीघ्र शक्तियां प्रकट हों, जो रहतीं आच्छन्न ॥

लिखती मेरी लेखनी, एक-एक पद देख ।
पद-पद पर होता प्रगट, अभिनव आत्म-विवेक ॥

जागृति आत्म-विवेक की, करवाने का काम ।
'चन्दन मुनि' के सामने है लिखने का नाम ॥

प्यारे पाठक! जो लिखूं, रखूं एक अभिलाष ।
रचनाएं जो भी पढ़ें, बढ़े आत्म-विश्वास ॥

रानी के बलिदान से, पलट गया है चक्र।
'चन्दन' अब उस चक्र का, किया जायगा ज़िक्र॥

चरण तीसरा चरित का, 'चन्दन' लिखता आप।
धो डालेगी लेखनी, पूर्व भवों के पाप॥

बलिदान का प्रभाव

रानी का बलिदान देखकर, लगा सोचने रथिक खड़ा।
हाय! हाय! मेरे हाथों से, हुआ बहुत ही पाप बड़ा!!

क्षण पहले तो पाप धर्म को, नहीं मानता था जो नर।
क्षण के बाद उसी नर का बस, बदल गया चिन्तन का स्तर॥

कांप उठा तन, कांप उठा मन, कांप उठा त्रिभुवन सारा।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ बना वह, देख रहा है बेचारा॥

स्थितियां बना दिया करती हैं, कभी-कभी मानव को क्रूर।
आखिर मानव मानवता से, कभी नहीं रह सकता दूर॥

चाहे जितना उबल जाय जल, आखिर हो जाता शीतल।
जल-स्वभाव होता है शीतल, उससे कैसे जाय निकल॥

सत्य,अहिंसा,प्रेम,शान्ति औ' करुणा सद्गुण मानव के।
कलह, क्रूरता, बर्बरता हैं, तीनों दुर्गुण दानव के॥

जीवन में परिवर्तन आते, मिल जाते हैं जभी निमित्त।
सही दिमाग सुधर जाते हैं, बने हुए जो हों विक्षिप्त॥
औषधियों से-पथ्यों से ज्यों, रोगी पाते हैं आरोग्य।
योग्य सन्त उपदेशक बनते, जो कहलाते कभी अयोग्य॥
बना सन्त 'वाल्मीकि' आदि कवि, जो था डाकू कभी महान।
'तुलसीदास' सन्त ने पाया, नारी के वचनों से ज्ञान॥
श्रव्य-दृश्य घटनावलियों से, बदले जाते सारे चित्र।
जन्म-जन्म के पापी जन भी, हो जाते हैं पूर्ण पवित्र॥
'शालिभद्र' ने जाना श्रेणिक, नृप है मेरे सिर पर नाथ।
उसे विराग दिलाने वाली, बनी यही छोटी-सी बात॥
"त्याग करो तो जानूं" सुनकर, 'धन्ना जी' ने ली दीक्षा।
एक वचन से लेली देखो, सचमुच में जीवन-शिक्षा॥
सिर पर श्वेत केश का दर्शन, संयम प्रेरक कभी बना।
रोहिणेय को बचा लिया था, एक वाक्य जो कभी सुना॥
रक्तपात देखा जब तब से, बना अहिंसक आप अशोक।
वधिक हृदय भी पलट गया है, रानी का बलिदान विलोक॥

'वसुमती' की वीरता

सोचा राजसुता ने—'मेरी- मां ने मुझे पढ़ाया पाठ।
खोल दिये हैं मेरे खातिर, जितने भी थे बन्द कपाट॥

मां को मरते देख लड़कियां, क्या रख सकतीं इतना धैर्य ?
अचल और अचला का भी तो, एक वार डिग जाता स्थैर्य ॥

मां से हुआ वही मेरे से, अगर हुआ देखा व्यवहार।
मां की तरह खड़ी हूँ मैं भी, अव ही मरने को तैयार ॥

मां से भी जो मान न पाया, वह क्या मुझ से मानेगा।
इसीलिये मैं भी मर जाऊं, यह भी फिर क्या जानेगा ?

मन में ऐसा सोच-समझकर, वोली सुनलो-सुनलो वीर !
जिससे तुमको नहीं सोचनी, करनी कुछ भी हो तदवीर ॥

मेरी मां के पावन पथ पर, लो मैं भी चल देती हूं।
तुम्हें वदलने के खातिर मैं, कभी नहीं वल देती हूं ॥

अपना धर्म आपको रखना, मुझको रखना मेरा धर्म।
पुरुष वड़ा वेशर्म हो गया, नारी को है अव भी शर्म ॥

पश्चात्ताप और क्षमा-याचना

"राजसुता की सारी वातें, सुनी रथिक ने देकर ध्यान।
मेरे लिये लगी है तजने, लड़की अपने प्यारे प्राण ॥

दौड़ा हा! हा!! करता छोड़ा, करता था जो पश्चाताप।
"वेटी ! मेरी सारी भूलें, करिये माफ़, न मरिये आप ॥

अधमाधम मैं अधिक पातकी, रुचा नहीं मुझको उपदेश।
अब तू मरकर मुझे बना मत, जीवन भर तक दुखी विशेष॥

तुझे न डर है मेरे से अब, भाग गया समझो सब डर।
जितना है विश्वास शील पर, उतना ही मेरे पर कर॥

तेरी मां ने बदल दिये हैं, मेरी आंखें - मेरा दिल।
काम-भूत जो चढ़ा हुआ था, वह उतरा मैं गया बदल॥

अगर अभी विश्वास न हो तो, इतने दिन तक तो मत मर।
जितने दिन तक मेरे कथनों, को मैं लेता हू अनुसर॥

अगर विरुद्ध नजर आए तो, पीछे भी देना तन त्याग।
जला रही है मुझको देवी! मेरे कृत-कर्मों की आग॥"

कह कर रथिक गिरा चरणों में, फूट-फूट कर रोता है।
मानो अपने अपराधों को, अश्रुधार से धोता है॥

पापी से पिता

'वसुमति' लगी सोचने सुनकर, इसे सान्त्वना देना ठीक।
भक्षक-रक्षक बना है मेरा, क्यों न बनूं फिर मैं निर्भीक॥

"मेरे खातिर मेरी मां ने, तुम्हें बनाया धर्म पिता।
पावन रक्षण पाकर धार्मिक- जीवन अपना सकूं बिता॥

इसीलिये मत रोओ, खोओं- स्वास्थ्य न अपना कहना मान।
अन्तक्रिया करनी है मां की, इस पर ज़रा दीजिये ध्यान॥"

मां से भी बड़ी

हुआ बहुत आश्चर्य रथिक को, पुत्री है मां से बढ़कर।
मुझ जैसे पापी से भी, नहीं बोलती है चिढ़कर॥
धर्म-पिता! कह करके मेरा, कितना अधिक किया सम्मान।
ऐसी कन्याओं से ही तो, भारत माता की है शान॥

उपालम्भ के बदले मुझ से, कहती वचन सुकोमल फूल।
'चन्दन' मां के बढ़े विरह को, इतना शीघ्र गई है भूल॥

मुझे गर्व है

चिता बनाकर 'सती धारिणी' का शव रखकर धर दी आग।
ऐसे दृश्य कठोर हृदय में, भी है उपजाते वैराग॥
मुझे हर्ष है, मुझे गर्व है, मेरी मां के मरने पर।
शील धर्म के लिये स्वयं को, ऐसे अर्पण करने पर॥

ऐसी मां की मैं पुत्री हूं, रोना मेरा काम नहीं।
रोने से भी देखो बिल्कुल, मिल सकता आराम नहीं॥

पुत्री ! मैं तुम्हारा धर्म पिता हूं

मरनेवाला मर जाता है, पीछे वाले रोते हैं।
मरने वाला - जीने वाला, दोनों सुखी न होते हैं॥
मरने वाले की स्मृति हो तो, शिक्षाओं पर करो अमल।
उसने जैसा जीवन जीया, जीओ उससे अधिक विमल॥

आत्म-घात की इच्छा

जलता देखा शव रानी का, रोने लगता रथिक अधीर।
इतना रोया! इतना रोया! दिया दिशाओं को भी चीर॥

"जिस पर मैं मरता था वह ही, मरी जल रही मेरे हाथ।
अच्छा यही रहेगा मैं भी, जलूं यहीं मर इसके साथ॥

पाप-भार हल्का हो जाए, मर जाऊं जो मै पापी।
पुत्री! मुझे बख्शदे, बाक़ी- जीवन जीने से माफ़ी॥

रथ पर बैठ चली जावो तुम, मुझे यहीं पर मरने दो।
बहुत पाप का पछतावा है, कुछ तो-हलका करने दो॥

मेरे जैसे पापी को अब, जीने का अधिकार नहीं।
मेरे जैसे पापी के यह, रहने को संसार नहीं॥

नहीं दूसरा पापी मुझ-सा, नज़र कहीं भी आएगा।
कहकर मुझको नारी-घातक, सारा जग ठुकराएगा॥

जा करके परलोक बीच भी, शान्ति नहीं मैं पाऊंगा।
कर बैठा जो पाप भयानक, पुनः - पुनः पछताऊंगा ॥"

हाथ पकड़ लिया

रथी कूदने लगा चिता में, पकड़ लिया पुत्री ने हाथ।
मरकर नहीं सुधारी जाती, जीते बिगड़ चुकी जो बात ॥

रक्षा का सिर भार उठाकर, मरने को तैयार हुए!
तुमसे वीर पुरुष के दिल में, क्यों ये हीन विचार हुए?

किसी दृष्टि से उचित नहीं है, जल करके यों मर जाना।
अब तो अच्छा यही रहेगा, सुनो पिता जी! घर जाना ॥

पुत्री बनना और बनाना, बहुत कठिन कहलाता काम।
डर रखना पड़ता है 'चन्दन', दुनिया कर देती बदनाम ॥

कौशाम्बी की ओर

रुका रथी मरने से ऐसे, पुत्री द्वारा पाकर बोध।
अपने अपराधों पर अब भी, उमड़ रहा है भारी क्रोध ॥
कौशाम्बी की ओर आ रहे, रथ में होकर अब असवार।
पूज्य पिता जी! एक बात का, रखना होगा सदा विचार ॥

परिचय मेरा कभी किसी से, अंश मात्र मत बतलाना।
मेरी मां के मरने का भी, समाचार मत जतलाना॥
मैं भी नहीं किसी से अपना, परिचय दूंगी किंचिन्मात्र।
नहीं झलकने देता 'चन्दन', जो होता है उत्तम पात्र॥

धन आयेगा

इधर प्रतीक्षा में बैठी स्त्री, सोच रही थी मन ही मन।
रथिक नहीं आया है अब तक, काफ़ी लाएगा वह धन॥
अमुक-अमुक चीजें लाया वह, अमुक-अमुक ले आया माल।
एक दूसरे का आपस में, 'चन्दन' सुनते रहते हाल॥
मैंने ऐसे किया, किया क्या- तूने ? कैसे ? अब बतला।
कितना लाया? खाली आया? खो आया या? सच बतला॥
रथ को आते देख स्त्री ने, सोचा अब धन आएगा।
भवन और मन मेरा सारा, धन-धन से भर जाएगा॥

मैं भी और यह भी

इतने ही में रथ से उतरी, कन्या आई घर में एक॥
रथशाला में चला गया रथ, चकित रह गई स्त्री देख॥

यह कन्या कोई सुर कन्या– या कन्या गंधर्वों की ?
इसके मात-पिता ने खरची- होगी माया खरबों की !!

'कौशांबी' के किसी वंश में, ऐसा रूप नहीं देखा।
सारे अंकों में ज्यों होता, एक अनोखा ही एका ॥

मैं भी नारी, यह भी नारी, पर कितना है भेद महान !
रूपवान जो होता कोई, होता ही है वह गुणवान ॥

स्वर्ण-पिंजरे में कौवे को, कभी नहीं पाया है वन्द।
फूल गुलाब रखा करता है, सुन्दरता के साथ सुगन्ध ॥

अचरज करती-करती क्षण में, करने लगी बड़ा सन्देह।
इसे बनाकर प्रिया रखेगा, मुझसे छुड़वाएगा गेह ॥

इस दुर्बलता ने है उसके, मन को अस्थिर कर डाला।
दुखद सौतिया-डाह बुरी है, जैसे हो विष का प्याला ॥

ज़रा ध्यान से

रथ से उतर गई घर में फिर, जाकर पास प्रणाम किया।
मन से वे-मन से ही उसको, मां ने है आशीष दिया ॥

'प्रश्न उपस्थित किया--कौन हो? कैसे आई मेरे घर ?'
'माता जी! मैं सुता आपकी', बोली वसुमति आंखें भर ॥

तभी रथी है आकर बोला, 'नहीं हमारे घर सन्तान।
इसीलिये इसको लाया हूं, प्यारी ! कन्या है गुणखान ॥

कष्ट नहीं हो किसी तरह का, इसका रखना ध्यान विशेष।
मां को पालन करने का तो, दिया नहीं जाता उपदेश ॥

यद्यपि 'अच्छा' कह बोली वह, आज्ञा का होगा पालन।
पर मन में जो संशय जागा, मुश्किल उसका प्रक्षालन ॥

परम सुन्दरी रूपवती यह, सुता नहीं, आई है सौत।
सुख-सुहाग छीना जाएगा, मर जाऊंगी मैं बेमौत ॥

अपना घर

कहा सुता ने माता जी से, क्षुधा लगी कुछ खाना है।
नहीं मांगने से सकुचाई, अपना ही घर जाना है ॥

बना हुआ था जो भी भोजन, उसने इसको दिया परोस।
राजभोग पाने वाली ने, पाया इससे ही सन्तोष ॥

क्षुधा बिना जो खाया जाता, उसमें कभी न आता स्वाद।
'मीठी भूख हुआ करती है,' 'चन्दन' सूक्ति कीजिये याद ॥

भोजन के पश्चात देखती, क्या-क्या करना घर में काम।
जिसे काम करना होता है, गिनता वह आराम हराम ॥

नीयत में आलस्य भरा हो, उससे हुआ न करता काम।
उसको काम अगर दो, लेता- वह जल्दी जाने का नाम॥

सोती थी जब राजमहल में, उड़ती रहती स्वच्छ सुगन्ध।
लेकिन कहां रथी के घर पर, होता वैसा उचित प्रबन्ध॥

वहां जगाने आती सखियां, वचनावलियां मंगल बोल।
उठना पड़ता यहां आप ही, जल्दी अपनी आंखें खोल॥

शान्त चित्त हो शान्त इन्द्रियां, नीन्द तभी आती सुख भर।
अस्थिर मानस वाला सोया, लेता करवट इधर-उधर॥

सूर्योदय होने से पहले, साफ़ सफ़ाई की सुन्दर।
पानी छाना बरतन मलकर, रखें यथावस्थित अन्दर॥

बैठी पाक बनाने को अब, चतुरा सब लेकर सामान।
साधारण सामग्री से भी, बना दिए जाते पक्वान॥

मूर्ख स्त्रियां अच्छी चीजों को, बना डालती हैं बे-स्वाद।
कला-पूर्ण प्रत्येक कार्य ही, 'चन्दन' शिक्षा की बुनियाद॥

सुगन्धि फैल गई

दम्पति ने कर स्वादु भोजन, की उसकी तारीफ़ बड़ी।
सरस्वती-सी श्री-सी कन्या, बड़े भाग्य से हाथ चढ़ी॥

अच्छा काम किया जाने पर, अच्छा सभी बताते हैं।
परिश्रमी - पुरुषार्थी मानव, शक्ति न कभी छुपाते हैं॥
घर को बना दिया 'वसुमति' ने, बिल्कुल देव-सदन-सा स्वच्छ।
गच्छाधिपति रखा करते हैं, 'चन्दन' जैसे अपना गच्छ॥

दास-दासियां पास-पड़ोसी, लोग सभी करते तारीफ़।
होती है तारीफ़ तभी ही, खुद हो मानव अगर शरीफ़॥

छोटा-बड़ा काम करने में, कभी नहीं आलस करती।
अभी किये जाने वाले को, नहीं उठा पीछे धरती॥
दास-दासियां आदिक से भी, लेती चतुराई से काम।
अच्छे मालिक के नौकर भी, कभी न होते नमक हराम॥

दुख में सुख में साथ सभी का- देती रखती आदर मान।
हो जाती निवृत्त तभी बस, देने लगती उसको ज्ञान॥
खिला-पिला कर खाती-पीती, सोती सबको प्रथम सुला।
उठकर आप उठाती सबको, बड़े प्रेम के साथ बुला॥

बड़े प्रसन्न सभी रहते थे, देख सुता का सद् व्यवहार।
'चन्दन' आप भला होने से, कहता भला सभी संसार॥

रथी का मानस

रथी सोचता—'इस कन्या ने, उन्नति कर डाली घर की ।
होते हैं संयोग शुभंकर, ऊंची किस्मत हो नर की ॥
मेरी घरवाली के प्रति भी, मुझ-सा ही रखती सम्मान ।
जैसी भक्ति रखा करती है, मात-पिता के प्रति सन्तान ॥
मेरे दुर्व्यवहारों से ही, इसकी मां का हुआ मरण ।
ऐसे बरत रही है जैसे, घटना का हो नहीं स्मरण ॥
मेरे घर का भार उठाकर, मुझ पर और चढ़ाया भार ।
मेरे दुर्गुण दूर निकाले, इसीलिये इसका उपकार ॥
सुता नहीं, आराध्य देव-सी, परम पूज्य है परम महान ।
ऋण से मुक्त न हो सकता हूं, चाहे कर दूं अर्पित प्राण ॥

रथी की स्त्री

सब खुश थे, नाराज थी पत्नी, प्रतिदिन बढ़ता था सन्देह ।
वर्षा ऋतु आ जाने पर ज्यों, उमड़-घुमड़ कर चढ़ता मेह ॥
जन्मी कहां, कहां से आई, नहीं बताती अपना नाम ।
पता पिता-माता का अब तक, नहीं बताती सच्चा ठाम ॥
कोई नहीं पूछता इससे, सारे गाते हैं गुणगान ।
सब के दिल में कैसा इसने, 'चन्दन' बना लिया है स्थान !!

काम किया करती है ऐसे, जैसे हो निज घर का काम ॥
पल भर को विश्राम न लेती, करती नहीं ज़रा आराम ।
रुकती नहीं, नहीं थकती है, क्योंकि इसे करना अधिकार ।
मेरे से भी अधिक पा लिया, इसने मेरे पति का प्यार ॥

गुण पर अवगुण

"इसीलिये इसके गौरव को, गिरा दिया जाना है ठीक ।
आने दिया अगर चींटी को, लिये सांप के पड़ती लीक ॥
कूड़ा-कर्कट डाल स्वयं ही, डांट-डपट देती इसको ।
अस्त-व्यस्त कर सभी वस्तुएं, बुरी झपट देती इसको ॥
बड़ी सफ़ाई करने वाली, क्या ऐसा ही करती काम ?
काम किसे करना है बस जी! दुनिया को दिखलाना नाम ॥"

निन्दा और भर्त्सना करके, उपालम्भ देती हैं भारी ।
'चन्दन' अपराधिन घोषित कर, सुख से सोती थी वह नारी ॥

ऐसा होता ही है

क्षमा करो माता जी! मेरी- असावधानता का यह दोष ।
फिर से भूल न होने दूंगी, ग़लती का मुझको अफ़सोस !!

मां का दोष जानती सारा, फिर भी करती भूल क़बूल।
वाहन तेज चला करता जब, तब पीछे उड़ती है धूल॥

समझ रही थी मेरी मां ने, कहा हुआ है रखना धैर्य।
अपवादों से साधु पुरुष का, किंचित स्खलित न होता स्थैर्य

अच्छे को भी बुरा, बहुत को- थोड़ा, बतलाया जाता।
सेवा-धर्म गहन होता है, 'चन्दन' इसीलिये गाता॥

सुना नम्रता पूर्वक सारा, जो भी बतलाया अपराध।
दश धर्मों में प्रथम धर्म से, सचमुच होती पूर्ण समाध॥

ताली नहीं बजाई जाती, जब तक रहे अकेला हाथ।
लड़ा नहीं जाता है तब तक, नहीं सामने आती बात॥

रथी की बात

कभी एक दिन काम काज से, निपट जरा लेती विश्राम।
सोच रही थी—'किया कौनसा, और कौन-सा बाक़ी काम?
इतने ही में रथी आ गया, करने को इससे कुछ बात।
छुप कर लगी देखने नारी, सुन कर कुछ करना उत्पात॥

क्योंकि रथी को बुरा समझती, करती थी केवल अनुमान।
ढूंढ रही थी कहीं मुझे मिल- जाए कोई छिद्र महान्॥

बोला रथी सुता से ऐसे, मुझे पता है, है तू कौन।
किस कारण से नहीं बोलती, नहीं खोलती अपना मौन ॥
स्थिति वश आना पड़ा यहां पर, करना पड़ता सारा काम।
अधिक परिश्रम क्या अच्छा है? क्यों न किया करती आराम?
दास-दासियां नौकर-चाकर, रखदूं अगर ज़रूरत और।
देना उन्हें व्यवस्था सारी, केवल उन पर रखना ग़ौर॥
अच्छा भोजन क्यों न करती, क्यों न धारती आभूषण?
वस्त्र पहनती क्यों न अच्छे, इसमें बतला क्या दूषण?
शान्त भाव से परमात्मा का, स्मरण करो लेकर माला।
ऐसा कथन रथी का सुनकर, उत्तर देती है बाला॥

बढ़िया वस्त्र और आभूषण

बढ़िया वस्त्र पहनने से तो, नहीं कभी होता गृह-काम।
बन-ठन करके तो होता है, जग में केवल सुख-आराम॥
दूध मुंहे मुंहे निज बालक को भी, गोदी में लेने से डर।
कहीं नये वस्त्रों को गन्दा, कर न देवे अशुचि से भर॥
बढ़िया वस्त्र और आभूषण, कभी न करने देते काम।
लेकिन काम-काम से जिसको, अच्छे कपड़ों से क्या काम?
मैले फटे पुराने कपड़े, अपना दिखलाते आलस।
धोना-सीना अच्छा रहना, अपने है हाथों के वश॥

काम और श्रम

मैं जो काम कर रही उसका, नहीं किसी पर पड़ता बोझ।
खाना ज्यों आवश्यक है त्यों- श्रम भी आवश्यक है रोज़॥
जो मैं मानूं तभी दुःख हो, नहीं काम से दुख होता।
दुःख उसे होता है, सुन कर- नाम काम का जो रोता॥
खाना छोड़ नहीं सकते पर, छोड़ दिया जाता है काम।
मानव ऐसा करने वाले, करते धर्म-कर्म बदनाम॥
काम दासियां कर लेंगी यह, काम नहीं है मेरे योग्य।
जो हो काम किया औरों का, हो जाता कैसे उपभोग्य?
स्वयं नहीं कर सकने पर तो, आवश्यक लेना सहयोग।
मैं क्यों करूं? काम यह हल्का, सचमुच ये दोनों हैं रोग॥
बड़ा स्वयं को मान लिया जब, हो जाता उत्पन्न अहं।
जिसने काम किया हो खुद वह, छोटा समझा जाय कथं?
दास-दासियां जो करते हैं, उसमें होता कहां विवेक।
अच्छी एक धर्मिणी जितना, अच्छी तरह करेगी देख॥
काम छोड़ देने वाले तो, हो जाते हैं अति परतन्त्र।
काम न करते कार्य-सिद्धि के- लिये जपा जाता है मन्त्र॥
काम स्वयं करते हैं तब तो, मनस्ताप का नहीं सवाल।
सारे उत्तर देते थकते, नौकर सुन प्रश्नों का जाल॥

कहा तुम्हें ऐसा करने को, ऐसा क्यों कर डाला रे !
पड़ा हरामी लोगों से तो, हाय ! मुझे अव पाला रे !
नित्य कलह से वचने को मैं, यही मार्ग अपनाती हूँ।
'चन्दन' शान्त-सुखी रह करके, प्रेम वहुत-सा पाती हूँ ॥

मैं भी करूंगा

सुनकर रथिक विनय युत वोला, नहीं मानती है तू भेद।
सारे-सारे दिन के श्रम से, तुझे नहीं होता है खेद !!
आराध्य! भगवती! क्षमा करो, मैं भी श्रम-रत होऊंगा।
पड़ा-पड़ा आलस में अपना, जीवन व्यर्थ न खोऊंगा ॥
अगर न मैं कुछ कहता तो मिल, पाता नहीं मुझे उपदेश।
भले आदमी को सुनने में, होता भारी भला हमेश ॥
सुनीं जांयं जो अच्छी वातें, उनका होता वड़ा असर।
वुरा देखकर सुनकर होता, वुरा यहां पर आप वशर ॥
वुरा न वोलो, सुनो वुरा मत, वुरा न देखो आप कभी।
'चन्दन' वुरा नहीं कुछ करते, तो क्यों होगा पाप कभी ॥

यही चाहिये था

छुप कर खड़ी सुनी पत्नी ने, पुत्री और पिता की वात।
इसने सोचा–आज मिल गया, भारी भेद वात का हाथ ॥

मुझसे कभी न कहता अच्छा, खाने - पीने - रहने का।
आशय क्या है इसका इसको, ऐसी बातें कहने का ?

मैं कहती हूं काम अधिक है, नौकर रखिये कोई और।
तब मुझ से कहता करने को, क्यों तूं हुई काम की चोर ॥

नई साड़ियां लाने को जब, कभी कहा तो सुना नहीं।
'बनवा दूंगा - बनवा दूंगा', कहते ज़ेवर बना नहीं ॥

मैंने कभी नहीं सुख पाया, जब से आई इस घर में।
पता गया लग मुझको क्या-क्या, छुपा हुआ है अन्तर में ॥

इतने दिन तक लगा रही थी, केवल बातों से अनुमान।
लेकिन आज मिला है मुझको, दोनों का प्रत्यक्ष प्रमाण ॥

यह आराध्य भगवती उसकी, सुनता घण्टों तक उपदेश।
मेरे पास बैठने से ही, इसके मन को होता क्लेश ॥

मेरे किये हुए कामों की, कभी नहीं करता तारीफ़।
सुन्दर मुक्ताफल यह लगती, मैं लगती हूं खाली सीप ॥

'सुख से रहो' कहा जो इससे, इसका क्या होता है अर्थ ?
अर्थ यही है केवल अब इस, घर में मेरा रहना व्यर्थ ॥

मेरे वर्ण-रूप से इसको, घृणा हो गई है भारी।
इसीलिये तो ले आया है, युवती - रूपवती नारी ॥

अगर न ऐसी इच्छा होती, तो ले आता कुछ धन-माल।
लाया इसे बनाकर लड़की, देखो कैसा बड़ा कमाल !!
आज नहीं तो कल इसको यह, अपनी प्रिया बनायेगा।
फिर मुझको घर से जाने की, धमकी और दिखायेगा ॥
अगर दिया घर में रहने भी, रहना इसकी दासी बन।
'चन्दन' कितना सोच लिया है, हुआ बुद्धि-भ्रम पागल-पन ॥

नया सवाल

रथी गया उपदेश सुन, कन्या करती काम।
घरवाली ने घड़ लिया, बुरा - भला प्रोग्राम ॥
इससे पूछूं आज ही, नाम ठाम या गाम।
क्यों आई रहती यहां, क्यों करती है काम ?
क्यों न बताया आज तक, इसमें भरा रहस्य।
सही लगाने को पता, पूछूं आज अवश्य ॥
सहसा आई सामने, रचा भयंकर रूप।
'चन्दन' ज्यों आसोज की, बड़ी कड़ी हो धूप ॥
बिगड़ी मुख की आकृति, हुआ क्रोध से लाल।
'वसुमति' से करने लगी, 'चन्दन' कठिन सवाल ॥

जाति,जन्म,कुल,नाम का, वता पता तू आज।
छिप न सकेगी आज तू, जान गई सब राज ॥

'वसुमति' समझ सकी नहीं, हुई आज क्या बात ?
कैसे प्रश्न किये गए, सभी एक ही साथ !!

उत्तर यों देने लगी, छोड़ हाथ का काम।
माता मेरी आप हैं, पुत्री मेरा नाम ॥

जाति और कुल आपके, वे ही मेरे जान।
इतनी है संक्षिप्त में, मेरी कुल पहचान ॥

कड़कन और भड़कन

कड़क उठी सुन करके उत्तर, मुझे गया लग आज पता।
सभी सुनी हैं तेरी बातें, नहीं वताती नहीं वता ॥

पुत्री वन कर आने वाली, पत्नी वनने आई है।
मेरा सुख सोहाग छीनने, लगा रही चतुराई है ॥

इधर-उधर का नाम लगाकर, वकने लगती ऊल-जलूल।
टेढ़ी भवें वनाकर शिर में, वना लिया है वड़ा त्रिशूल ॥

तभी अन्न-जल लूंगी जव तू, निकल जायगी इस घर से।
'हाय! हाय रे! सौत आगई', चिल्लाई ऊंचे स्वर से ॥

गूंज उठा आकाश और घर, हुआ इकट्ठा सारा घर।
'वसुमति' पर आक्षेप देखकर, दंग हुए नौकर-चाकर !!

रथिक दौड़कर आया बोला, क्या यह रूप रचा विकराल?
रूप तुम्हारा अच्छा होता, उठना फिर था नहीं सवाल ॥

जिस दिन से इसको लाये हो, उस दिन से ही था अनुमान।
किन्तु आज तो पाया पूरा, मैंने इसका पुष्ट प्रमाण ॥

'आराध्या' 'भगवती' बताकर, इसे बनाते मेरी सौत।
सौत नहीं नारी की होती- जीते जी होती है मौत ॥

इस घर में या यही रहेगी, या मैं ही रह पाऊंगी।
निकल न जाएगी जब तक यह, तब तक अन्न न खाऊंगी ॥

अगर दूसरे घर में ले जा, रखा, रहेगा फिर सम्बन्ध।
संकट मेरा नहीं टलेगा, आप हो रहे हो कामान्ध ॥

लूट मची 'चम्पा' में सारे, सैनिक लाए अच्छा माल।
आप माल के बदले लाये, मेरे लिये उठा कर साल ॥

इसे बेचकर बीस लाख- सोनैयें लेकर आवोगे।
वरना मुझे यहीं आंगन में, मरी हुई ही पावोगे ॥

जैसे कपटी आप रहे हो, वैसी ही यह है कपटिन।
घर की बनी मालकिन दिन-दिन, तुम्हें हो गया पागलपन ॥

कपट प्रकट हो जाने पर अब, घर से इसे निकालूंगी।
दूध पिलाकर इस सांपिन को, कभी न 'चन्दन' पालूंगी॥

रथी का खुलासा

बोला रथिक—हो गया है क्या, आज तुझे यह मुझे बता।
मुझे और मेरी पुत्री को, बुरी तरह क्यों रही सता॥
इसके साथ रही इतने दिन, फिर भी आंक न पाई मोल?
कोई बेचा करता भोला- सज्जन एक भाव खल-गोल॥
इसके आने से इस घर में, हुआ बहुत-सा परिवर्तन।
देखो मेरे जीवन में भी, आया कितना सादापन॥
बीसलाख सोनैयां इसके- सम्मुख कोई चीज नहीं।
खीज दिखा मत अगर तुझे इन, बातों पर हो रीझ नहीं॥
अगर निकाला गया इसे तो, पीछे तू पछतायेगी।
'चन्दन' कहता खोया अवसर, कभी नहीं फिर पाएगी॥

इज्जत की धूल

देख सरलता आज रथिक की, उसे आ गया भारी क्रोध।
मानो पूर्व जन्म का सको, इससे लेना है प्रतिशोध॥

"यही सती है, यही सभी से, तुम्हें दीखती सर्वोत्कृष्ट।
सभी जगत की स्त्रियां और मैं, इकदम तुम्हें लगीं निकृष्ट॥
प्रेम-पात्र का स्फुरण मात्र भी, प्रेम बढ़ाता रहता है।
उसकी बुरी-बुरी बातों को, वह तो बुरी न कहता है॥
आप मानते महासती, मैं- कहती पतिता-कुलटा है।
सुलटा पासा आप बताते, मैं बतलाती उलटा है॥
भला इसी में है इस घर का, इसे यहां से करदो दूर।
और अधिक कहलाने को बस, मुझको मत करिये मजबूर॥
अगर न इसे निकालोगे तो, मैं चौराहे पर जाकर।
किस्सा फैला दूंगी सारा, ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर॥
मेरी क्रोध-हवा से क्यों हो, उड़वाते इज़्ज़त की धूल।
नहीं दीखती अभी तुम्हें जो, दीखेगी फिर भारी भूल॥"

तू निकल जा

पुत्री पर आक्षेप-धमकियां, सुनकर रथिक हो गया क्रुद्ध।
बांध टूट जाने पर कैसे, रह सकता है जल अवरुद्ध॥
"सोच रहा था किसी तरह से, भली मानसिन जाए मान।
सीधी बातों से न समझता, जो हो जाता है शैतान॥
इसे निकाल नहीं सकता मैं, तू चाहे जो भी ले कर।
तेरे जैसी घरवाली से, मुझ को क्या होना है डर॥

अच्छा किसी कु-भार्या से, गिना कंवारापन जाता।
कह देना लोगों से जो कुछ, तुझको है कहना आता॥
तुझे निकाल दिया जाएगा, जो तू नहीं जायगी फिर।
मुझे नहीं पहचान सकी तू, खुजलाया है तेरा सिर॥"

शान्ति समाधान

मात-पिता की बातें सुनकर, लगी सोचने वह बाला।
खड़ा हो गया बड़ा बतंगड़, होगा सबका मुंह काला॥
कलह अनावश्यक करती है, मेरे से प्रतिदिन माता।
'अच्छा होता मुझको ही घर से, शीघ्र निकाल दिया जाता॥
अच्छे कामों का यह देखो, अच्छा दिया जा रहा दण्ड।
दण्ड नहीं मिलने से दुगुना, करने लगते दुष्ट घमण्ड॥
पूज्य पिता जी की सेवा में, कर लूंगी फिर सदा सहर्ष।
ऐसा करना दूर रहा है, नहीं सोचना भी आदर्श॥

फिर सोचा वसुमति ने मेरे, कारण मां को होता कष्ट।
पूज्य पिता जी क्यों होते हैं, मेरी माता जी से रुष्ट॥
बिक जाना ही श्रेयस्कर है, मां की इच्छा के अनुसार।
मेरी सत्य परीक्षा होगी, शिक्षाएं होंगी साकार॥

उठकर खड़ी हो गई फ़ौरन, वोली झगड़े का क्या अर्थ?
विक जाऊंगी स्वयं आपका, झगड़ा है माता जी! व्यर्थ ॥
है सन्देह आपके मन में, मैं आई वनने को सौत।
मुझे न वनना सौत आपकी, केवल करना धर्मोद्योत ॥

सुनो पिता जी! माता जी पर, निष्कारण क्यों होते क्रुद्ध?
मुझे वेचने का कह करके, किया कौन-सा कार्य विरुद्ध?
इतने दिन तक रक्षा करके, वदले में चाहता है लाभ।
जग ने विल्कुल सही वताया, व्यापारी का यही हिसाव ॥
माता जी ने आंका मेरा, वीस लाख सोनैया मोल।
वास्तव में कीमत क्या होगी, लोग वतायेंगे जव वोल ॥
मेरे विकने से ही होगा, माता के मन को सन्तोष।
असंतोष का मुझे लगेगा, आगे जाकर सारा दोष ॥
विक जाने की वात उठी है, इसमें भी है हित मेरा।
इस घर का उद्धार हो गया, मेरे द्वारा वहुतेरा ॥

आवश्यकता वहीं दीप की, जहां दीखता अन्धेरा।
जहां सुधार ज़रूरी लगता, जाना आवश्यक मेरा ॥
'कैकेयीरानी' 'रघुवर' को, नहीं भेजती जो वन में।
तो प्रातःस्मरणीय न वनते, दशरथ-नन्दन त्रिभुवन में ॥

अहित दीखता उसमें भी कुछ, अन्तर्निहित रहा हित है।
पहले समझ न सकता मानव, मानव की मति सीमित है॥
भला इसी में है मानव का, भला मान स्वीकार करे।
कितने ही दुख आएं दुख का, 'चन्दन' नहीं विचार करे॥

क्यों होने दूं

हृदय पसीज उठा लोगों का, जितने भी सुनते थे बात।
करामात है बड़ी बात में, यहां कीजियेगा साक्षात॥
"बोला रथी—कहा क्या तूने, क्या तेरे को विकने दूं?
मंगलमयी सती को अपने, घर पर क्या नहिं टिकने दूं?
मेरी स्त्री बड़ी कर्कशा, यह जाए तो जाने दूं।
तुझे बेचकर इस पापिन को, अन्न नहीं मैं खाने दूं॥"

आप नहीं मैं खुद

"आप ज़रा विश्वास कीजिये, बिक जाऊंगी अपने आप।
सुता बेचने का न लगेगा, यहां आपको कोई पाप॥
चलिये आप साथ में मेरे, मैं खुद ही दूंगी आवाज।
चौराहे पर खड़ी रहूंगी, जुड़ जाएगा स्वतः समाज॥

वीस लाख सोनैये लाकर, माता जी को दे देना।
मैं न रहूँगी घर में तब क्यों, बोलेंगे तोता - मैना॥
किया कलंकित मुझे, आपको- इसीलिये यह करना काम।
बिक जाने से माता जी को, मिल जायगा कुछ आराम॥"

घर से बाज़ार तक

भरकर आह रथी है बोला- 'नहीं उचित है यह व्यवहार।
मेरी आंखों के समक्ष हो, बेटी बिके बीच बाज़ार॥

सुनो पिता जी? आप अब, त्यागें सोच - विचार।
रहने देगा अब नहीं, मुझे यहां संसार॥

मां से बोली—क्षमा कीजिये, जो भी हों मेरे अपराध।
किया प्रणाम बिदा मांगी है, मां ने मौन रखा है साध॥
मन ही मन वह लगी सोचने, मेरे डर से डरे सभी।
बिकने को तैयार हो गई, यह कुलटा है अभी-अभी॥

मिली सभी घरवालों से जब, रोते हैं नौकर-चाकर।
आज जा रही है चिन्तामणि, अपने हाथों में आकर॥

ऐसा रत्न न टिक सकता है, निरभागी नर के आवास।
आंसू लगे गिराने घर के, जितने नये-पुराने दास॥

निकली राजसुता अब घर से, पहन रखे हैं सादे वस्त्र।
जबकि युद्ध अहिंसात्मक हो, तब क्या बांधे जाते शस्त्र?

रथी आ रहा पीछे-पीछे, रोता बेचारा चुपचाप।
पुण्य निकल आया है घर से, घर में रहा पाप का पाप॥

चौराहे पर भीड़

'कौशाम्बी' के चौराहे पर, खड़ी हुई 'चन्दनबाला।'
खड़ा हुआ जैसे हो गाड़े- वाला या फेरी वाला॥

'मैं दासी हूं बिकने आई', कहती ऐसे स्वयं पुकार।
सुनती है नगरी 'कौशाम्बी', भरा हुआ सारा बाजार॥

बिकते रहते दास-दासियां, लगता रोज़ाना बाज़ार।
बुरा न माना जाता बिल्कुल, लोक मान्य जो हो व्यवहार॥

सादा वस्त्रों में लिपटा था, रूप-रंग रंगीन महान।
'कहने लगे देखने वाले, हाय-हाय रे! हे भगवान!!'

'ऐसी स्त्री कैसी हालत में, बिकने को आई बाज़ार!
'इसके मात-पिता को देखो, कुछ भी आया नहीं विचार!!'

विकाउ दासी

लेने नहीं देखने को ही, जमा हो गई भारी भीड़।
है मज़ाक बन जाया करती, कभी-कभी पीड़ित की पीड़॥

"लेने वाले लगे पूछने, आप बताएं अपना मोल।
हम अपनी क्रय-शक्ति देखलें, जेबें भी लें ज़रा टटोल॥"

"बीस लाख सोनैया देगा, वह खरीद मुझको पाए।
नहीं पास में पैसा हो तो, वह चुपके से घर को जाए॥"

वाजवी बताइये

सन्न हो गए सुनकर सारे, बहुत बताए ऊंचे दाम।
दासी आखिर किया करेगी, घर का ही तो केवल काम॥

बीस लाख सोनैयों से हो- सकता है व्यापार बड़ा।
साधारण जनता के घर में, इतना धन भी कहां पड़ा?

गुणग्राहकता रखने वाले, बहुत नहीं होते धनवान।
गुण पर धन न्योछावर करने- वाले कोई बुद्धि निधान॥

बीस लाख सोनैयों में तो, बीस दासियां आ सकतीं।
इतनी महंगी दासी? हमने, कभी नहीं देखी बिकती॥

बिकना हो तो मूल्य वाज़वी, बतलादो अपना दासी!
चौराहे पर खड़ी-खड़ी क्यों, करवाती अपनी हांसी॥

क्या है कसर माल में अथवा, मालदार नर मिला नहीं ?
'कौशाम्बी' का इन बातों से, जाना जाता भला नहीं ॥

उतर पालकी से नीचे अब, सबसे आगे आई है ॥
अपने से भी अधिक सुन्दरी, रति-सी लड़की पाई है ॥

कोई जौहरी नहीं

"पूछा—कौन? खड़ी हो कैसे?" "मैं दासी बिकने आई।"
प्रत्युत्तर में वेश्या बोली, "क़ीमत कितनी बतलाई?"

"बीस लाख सोनैये मेरे, पूज्य पिता जी को देगा।
मुझे खरीदेगा, दासी से- घर के काम सभी लेगा ॥"

"वेश्या बोली-क्या न अभी तक, देने वाला आया नर ?
अथवा बिना जौहरी कोई, कद्र नहीं सकता है कर ॥
नर-नारी के लक्षण कोई, अगर जानता होता जी !
बीस लाख सोनैयों को वह, ग्राहक कभी न रोता जी !!
तेरे पर क्या तेरे तन के, एक-एक अवयव पर देख।
न्योछावर कर दी जाएगी, बीस लाख की थैली एक ॥

बैठ पालकी में चल अब ही, दे दूंगी क़ीमत तेरी।
बनियों-सी चिक-चिक करने की, कभी नहीं आदत मेरी॥
लेना वह, ले लेना चाहे- जितना भी महंगा हो माल।
लेना ही जब नहीं व्यर्थ में, 'चन्दन' कर न कभी ख़याल॥"

काम क्या लोगी?

सुन औदार्य पूर्ण विश्लेषण, 'वसुमति' लगी देखने अब।
मुझे ख़रीद रही है क्यों यह, जानूंगी - पूछूंगी तब॥
अच्छा होगा पहले ही से, पूछूं जो आचार-विचार।
धोखा देना धोखा खाना, उचित नहीं होता व्यवहार॥
सोनैये ले लेने पर तो, करने होंगे सारे काम।
मुझे नहीं विश्वासघात से, होना दुनिया में बदनाम॥
बोली—'माता! खड़ी हुई हूं, बिकने को बिक जाना है।
जो भी क़ीमत देगा उसके, साथ मुझे रुक जाना है॥
किन्तु क्रयी को किसी तरह का, जो हो जाता हो नुक़सान।
मेरा ही नुक़सान वही है, अतः प्रथम करती पहचान॥

मुझको आप ख़रीद कर, क्या-क्या लेंगी काम?
सदा स्पष्टता में सुना, होता है आराम॥

उचित जंचेगा जो मुझे, तो जावूंगी साथ।
अभी नहीं कुछ भी हुई, माता! पक्की बात॥

अमर सुहाग

वेश्या हंसी ठहाका देती, मेरे घर का काम प्रसिद्ध।
तेरी अच्छी क़िस्मत से ही, हुए मनोरथ तेरे सिद्ध॥

तेरें जैसी सुन्दरियां क्या, दासी बनकर जीएंगी?
हुई अप्सराएं जो पैदा, वे अमृत ही पीएंगी॥

दासी तुझे बना दे ऐसा, लक्षण नहीं अंग में एक।
एक घड़ी से खड़ी-खड़ी ने, लिया पूर्णतः तुझको देख॥

तुच्छ समझती मैं सोनैये, मुझे चाहिये रूप अतुच्छ।
हाथी अगर खरीदेगा जो, क्या खरीदेगा वह पुच्छ?

राजाओं को और रानियों- को जो भोग नहीं हैं प्राप्त।
सदा सुहागन रहने का सुख, मेरे घर से नहीं समाप्त॥

विधवा नहीं कभी भी होती, जो रहती है मेरे घर।
विधवा वह होती है जिसने, एक पुरुष का थामा कर॥

यहां पुरुष सेवक बन करता, तन, मन, धन सब न्योछावर।
क्रीतदास की तरह उपस्थित, रहते नित्य नये नरवर॥

शूर-वीर कितने ही मेरे, सम्मुख शीश झुकाते हैं।
दर्शन–स्पर्शन–सम्मेलन से, परमानन्द मनाते हैं॥

शृंगारों का उद्गम स्थल ही, कहलाता है मेरा घर।
रूप बदलना–वेश बदलना, काम यही रहता दिन भर॥

बलप्रद कामोत्तेजक भोजन, मिलते मेरे यहां यथेष्ट।
पाक-शास्त्र में जिसे आज तक, लिखा गया है सर्व श्रेष्ठ॥

फूलों की शय्या में सोना, बैठ झूलने झूलेगी।
जितना देखा–सुना हुआ था, भोगा, उसको भूलेगी॥

मेरी सभी कलाएं तुझको, सिखला दी जाएंगी सत्य।
करो पूर्ण प्रावीण्य प्राप्त तुम, कह डाला संक्षिप्त स्वकथ्य॥

जितनी मान प्रतिष्ठा मेरी, सारी तुझे मिलेगी फिर।
उठकर खड़ी अभी हो जा तू, फ़िक्र विलम्ब ज़रा मत कर॥

बैठ पालकी में जावेगी, जहां कहीं जब जावोगी।
अपने आगे-पीछे चलते, हास-दासियां पावोगी॥

धूज उठेगी सारी धरती, कोप ज़रा दिखलावोगी।
ओष्ठ-स्फुरण होते ही अपना, काम सामने पावोगी॥

बिना निमन्त्रण भौंरे आते, फूलों का रस पीने को।
पी मकरन्द बहुत सारे वे, धन्य मानते जीने को॥

लेले तेरे साथ पिता जी- को सोनैये दिलवा दूं।
मुझको बड़ी खुशी होगी जो, उनको खिलवा-पिलवादूं॥

विश्व पण सुनलिया शान्ति ने, 'वसुमति' समझ गई सब भेद।
इसके हाथों बिक जाने की, खत्म आस, न लेकिन खेद॥

सौदा छोड़ दीजिये

हाथ जोड़कर बोली—"इच्छा- होगी नहीं आपकी पूर्ण।
कहा आपने जिससे मैंने, जान लिया जीवन सम्पूर्ण॥
ऐसा जीवन जीना मुझको, कभी नहीं है जरा पसन्द।
छोड़ दीजिये सौदा अपना, नहीं बैठता है सम्बन्ध॥"

"सोच रही थी मैं तो तेरी, भेंट सुखों से करवाती।
दासी कहने वालों के ही, सिर चरणों पर रखवाती॥"

'वसुमती' बोली—इन कार्यों का, मैं करती हूं उग्र विरोध।
छुड़वाती हूं पुरुषों में जो, भरा हुआ अज्ञान अबोध॥
मेरे से बाधा पहुंचेगी, सफल नहीं हो सकती आप।
मेरा और आपका जीवन, बिल्कुल अलग-अलग है साफ़॥"

सदाचार अपनाती हो तो, साथ आपके आ सकती।
बचपन से ही शील-धर्म पर, आस्था अधिक अडिग रखती॥"

क्या यह उचित है?

वेश्या बोली—"बड़ी कुशल हो, बात-चीत कर लेने में।
शर्म नहीं महसूस हुई कुछ, मुझको शिक्षा देने में॥
अभी कहा था—मैं दासी हूं, खड़ी यहां पर बिकने को।
अभी दाम देने वाले से, कहती है फिर रुकने को॥
डटी हुई हूँ मैं बोली पर, तू हटती जाती है दूर।
सदाचारिणी मैं हूं या तू, किसका ऊंचा रहा ग़रूर?
खड़ी हुई है जनता इससे, न्याय करा लेंगी अपना।
दोनों में से देखूंगी फिर, किसका सच्चा है सपना॥"
ऐसा कहकर खड़े हुए सब- लोगों से वह बोल उठी।
यह होगी तो आप लोग भी, देख सकोगे कभी कुटी॥
इसके दर्शन से—स्पर्शन से, तुम भी मानोगे आनन्द।
'कौशांबी' का स्वर्ग पुरी से, जोड़ा जायेगा सम्बन्ध॥

मर्त्य लोक में, कौशाम्बी में, सिर्फ़ एक ही घर पर फिर।
उड़ा करेंगे इस दुनिया के, जितने भोगी रसिक भंवर॥

तुम्हीं बतावो अब यह लड़की, कैसे कर सकती इन्कार।
पूर्ण समर्थन आप कीजिये, किया सभी ने अंगीकार॥

सुन करके आचार अगर है, जाना इसको अस्वीकार।
सौदा कच्चा ही कहलाता, कहा किसी ने स्पष्ट पुकार॥
नहीं अल्पमत टिक सकता है, गिर जाता है अपने आप।
वेश्या बोली-सुनो, देख लो, जनता क्या कहती है साफ़॥
सभी उपायों द्वारा तुझको, मेरे घर ले जाऊंगी।
मेरी इच्छा होगी वो ही, कार्य सदा करवाऊंगी।

सतीत्व नहीं बेचना है

'वसुमति' बोली–"चलने से मैं, कभी नहीं करती इनकार।
काम आपका करना मुझको, कभी नहीं होगा स्वीकार॥
नहीं सतीत्व बेचना मुझको, नहीं बढ़ाना पापाचार।
मुझे साथ ले जाने का अब, छोड़ दीजिये आप विचार॥"

रथी की आवाज़

ज्यों-ज्यों समझाती हूं त्यों-त्यों, तेरी बढ़ती गई अकड़।
अभी पालकी में बिठलाती, तेरे दोनों हाथ पकड़॥"

कहा नौकरों से—"दासी को, बिठला दो बलपूर्वक साथ।
अपने साथ न्याय है, जनता- करती है अपने हढ़ हाथ॥"

'वसुमति' हटी जरा सी पीछे, वेश्या को कुछ बढ़ते देख।
अपनी पुत्री की रक्षा में, केवल रथी खड़ा था एक॥
खबरदार! जो हाथ लगाया, ली अपनी तलवार निकाल।
डांट-डपट बतलाता मानो, खड़ा हो गया काल कराल॥
इसे अरक्षित समझ लिया क्या? देखो मुझे और तलवार।
टुकड़े गिने न जाएंगे फिर, अगर कर दिया एक प्रहार॥

जनता के प्रकार

वेश्या पीछे हटती-हटती, लगी धूजने चिल्लाने।
खड़े हुए जितने भी साथी, लगे सभी वे झल्लाने॥
किया रथी का पूर्ण समर्थन, राजस प्रकृति वालों ने।
वेश्या का दल बड़ा किया है, तामस की मति वालों ने॥
सात्त्विक प्रकृति वाली 'वसुमति', खड़ी देखती है चुपचाप।
भिड़े नहीं ये, छिड़े नहीं रण, ऐसा सोच रही है आप॥
वेश्या को मेरी बातों पर, बिल्कुल नहीं रहा विश्वास।
समझाने के लिये आ गई, 'वसुमति' पूज्य पिता के पास।

"मरने और मारने खातिर, क्यों होते हैं आप तैयार ?
शस्त्र प्रयोग जहां होता है, होता ही है बुरा प्रचार ॥

शस्त्रों पर विश्वास न करिये, करिये आत्मा पर विश्वास ।
बचा लिया जाता है जल्दी, आत्म-शक्ति से बड़ा विनाश ॥

मां ने जो कुछ कर दिखलाया, वह क्यों भूल गए बिल्कुल ।
शान्ति स्थापना में सहयोगी, बन कर जीवन करो सफल ॥

पण्डित कहते—वेश्या का तन, धन, मन, वचन सभी अपवित्र।
इसीलिये अपवित्र भावना- का परिचय देती सर्वत्र ॥"

शान्तिप्रद उपदेश श्रवण कर, रथिक होगया बिल्कुल शांत ।
शान्त हो गई वेश्या भी जो, बनी हुई भय से विभ्रान्त ॥

लिया शान्ति का सब लोगों ने, लेकिन देखो उलटा अर्थ ।
यह तो राज़ी है जाने को, पिता रोकता इसको व्यर्थ ॥

हो-हल्ले में सुनी न जाती, सच्ची जो होती आवाज़ ।
मानो हमला बोल दिया है, सारे लोग हवाई बाज ॥

निरुपाय का उपाय

वसुमति बोली—सुनिये प्रभुवर! मैं असहाय खड़ी हूं अत्र ।
माता त्वमेव, त्वमेव पिता हो, और त्वमेव आज हो मित्र ॥

श्रावक 'सेठ सुदर्शन' प्रभु की, स्मृति ले करके हुआ खड़ा।
घातक 'अर्जुनमाली' के पर, उसका बहुत प्रभाव पड़ा ॥
चीर-हरण के समय 'द्रौपदी', निर्बल होकर आई थी।
उसके शील धर्म ने उसकी, क्या न लाज बचाई थी ?

रथिक शान्त है, सुता शान्त है, शान्त खड़े हैं दल के लोग।
वेश्या तुली हुई है अपने- बल का करने को उपयोग ॥

ज्यों ही पांव बढ़ा वेश्या का, वानर ही वानर आये।
हमलावर बनकर वेश्या पर, ज़ोर-ज़ोर से घुर्राये ॥
वस्त्र फाड़ने लगे, नोचने- लगे शरीर सभी मिलकर।
किल-किल कार जब लगे बोलने, वेश्या रोई तिल-मिल कर ॥
टूट पड़े थे उस ही पर सब, चहुं ओर से घेर लिया।
इधर-तिधर न कहीं-किधर भी, जाने उनने उसे दिया ॥
टुकड़े-टुकड़े हुई ओढनी, तार-तार थे सभी वसन।
जगह-जगह से काटा ऐसा, ज़ोर-ज़ोर से करे रुदन ॥
मुझे बचावो-मुझे बचाओ, पुनः-पुनः चिल्लाती है।
मेरी तो बस आज यहां पर, नज़र मौत ही आती है ॥
हाय! हाय री! दैया! मैया! हाय! हाय! मेरे भगवान!
टपक पड़े बन्दर ये कितने! हरने मेरे प्यारे प्राण ॥

इन दुष्टों से मेरी रक्षा, कोई क्यों न करता है ?
हरइक ही क्या वीर-बहादुर, इन दुष्टों से डरता है ?

कौन पुकार सुने पर उसकी, ऐसी थी वह विकट घड़ी।
हरइक को ही अपने-अपने, प्राणों की थी अरे! पड़ी ॥

भाग गए थे लोग देखकर, वानर-सेना का आतंक।
वेश्या खड़ी अकेली जैसे, खड़ा हुआ हो कोई रंक !!

दास-दासियां नौकर-चाकर, गए समर्थक लोग सभी।
वेश्या बोली—'ऐसा सौदा, नहीं करूंगी और कभी ॥

नाक-कान पर स्थान-स्थान पर, लगे वानरों के नाखून।
अर्ध-नग्न-सी गिरी धरा पर, लगा निकलने बह-बह खून ॥

दुर्जन पर दया

'वसुमति' से न सुना जाता है, ऐसा करुण स्वर क्रन्दन।
नहीं वानरों से भय खाना, इसे बचाना है 'चन्दन' ॥'

हटो वानरो ! हटो वानरो ! कष्ट मुक्त कर दो मां को।
ज़रा सोचने और समझने- का भी अवसर दो मां को ॥

मां न बुरी है, बुरे कर्म हैं, वह इससे छुड़वाना है।
मुझे मारने वाली को ही, अब तो मुझे बचाना है ॥

पक्षी उड़ जाते हैं जैसे, सुनकर गोली की आवाज़।
भाग गई है वानर सेना, लगा लीजिये अब अन्दाज़॥
तन पर जितने घाव नहीं थे, मन पर घाव पड़े भारी।
रोगी भोग चुका हो कोई, प्राणान्तक-सी बीमारी!!
वेदन वेश्या के तन का- संवेदन 'वसुमति' के मन का।
शायद समता पा सकते हैं, कहता है मन 'चन्दन' का॥
लक्ष्मण के ज्यों घाव भर गए, सती विशल्या का पा स्पर्श।
वेश्या के घावों को भर कर, 'वसुमति' ने स्थापा आदर्श॥
मत घबरावो माता जी! तुम, अभी ठीक हो जावोगी।
पहले जैसी पूर्ण स्वस्थता, जल्दी ही बस पावोगी॥

आन्तरिक सौन्दर्य

वेश्या लगी सोचने—यह तो, है कोई देवी साक्षात।
इसके ध्यान मात्र से कितना, मचा वानरों का उत्पात॥
इसका इंगित पाकर वानर, भाग गए मेरे से दूर।
इसने नहीं बचाया होता, हो जाती मैं चकना-चूर॥
विरला ही करता है कोई, अपकारी पर भी उपकार।
इसीलिये बतलाये हैं जी! उपकारों के कई प्रकार॥
मुझे बहुत समझाया इसने, मैंने किया व्यर्थ अभिमान।
अतः वानरों के हाथों से, मैंने ही लुटवाई शान॥

'वसुमति' की इस शील-शक्ति का, वेश्या ने परिचय पाया।
तभी समझ में आया उसके, यह कोई है अद्भुत माया ॥
केवल रूप नहीं है सुन्दर, आत्मा में सौन्दर्य भरा।
इसके आत्म-स्रोत से कितना, है स्नेहामृत आज झरा ॥
मुझे बचाने वाली है तो, यही एक है आज खड़ी।
ऐसी शीलवती से 'चन्दन', मैं हो सकती नहीं बड़ी ॥

सहायता नहीं संवेदन

इतने ही में दास-दासियां, नौकर - चाकर भी आये।
मरहम और पट्टियों के भी, बण्डल साथ नये लाये ॥
बिखरे गहने-कपड़ों की है, करता कोई जन संभाल।
कोई पास बैठ कर सारा, लगा पूछने विस्तृत हाल ॥

"हमको नहीं किसी ने काटा, नोचा नहीं किया नुक्सान।
वानर-सेना का था केवल, एक आप पर बाई! ध्यान ॥
हमने बहुत किये हो-हल्ले, किन्तु न भागे वे वानर।
वानर-सेना के सम्मुख नर, कहो और क्या सकता कर ॥
रामायण में सुनते हैं हम, वानर-सेना रघुवर की।
किन्तु आज ही देखी हमने, वानर-सेना की घुरकी ॥

सुना न जाता, सहा न जाता, वानर सेना का हमला।
नहीं सामने सेना कोई, आप अकेली थीं अबला॥

सुधरा हुआ सुधारक

पालन किया करूंगी अब से, सदाचार का सदा सहर्ष।
दुराचार को दूर हटाने, सतत करूंगी मैं संघर्ष॥
दुराचार के कारण मेरी, मिट्टी आज खराब हुई।
दुराचार के कारण ही तो, बीच भंवर के नाव हुई॥
नथुनी खैंची ऐसी मेरी, दुष्ट वानरों ने आकर।
दुराचार ने करदी नकटी, अहो! नाक ही कटवा कर॥
भला प्रभो! हो इस देवी का, इसने मुझे बचाया है।
सदाचार ही नस-नस में बस, मेरे आज समाया है॥

सुधरी हूं तो मैं सुधरी हूं, घर तो अभी नहीं सुधरा।
धरा धरा है, वसुन्धरा है, कहीं-कहीं पर है कुधरा॥
गृह-सुधार करने को मेरे, घर पर मेरे साथ चलो।
जैसे मुझे आपने बदला, वैसे गृह-जन को बदलो॥
जिसने अपने को बदला हो, वही बदलता औरों को।
साहूकारी सिखा न सकता, आप चोर दस चोरों को॥

इसका अर्थ यही है केवल; सुधरा हुआ सुधारक हो।
वही सुधार कार्य का आगे- जाकर एक प्रचारक हो॥
'वसुमती' के प्रति झुकती वेश्या, चली गई है अपने घर।
वानर-सेना वाली घटना, पहुंच गई घर-घर सत्वर॥

"चरण तीसरा' चरित का, रुका देखकर स्थान।
शीलधर्म सुखकर सदा, भारी महिमावान॥

शान्ति स्थापना के लिये, बिकना किया पसन्द।
देखो खुद के दुःख को, मान लिया आनन्द॥

वेश्या के अपकार पर, कर उसका उपकार।
देखो स्थापित कर दिया; दया-प्रेम भण्डार॥

'चन्दनबाला' ने किया, कितना ऊंचा काम!
लेना पावन चाहिये, सुबह-शाम यह नाम॥

'कौशांबी' के चौक में, अभी खड़ी हैं आप।
क्रेता नहिं कोई मिला, होता पश्चाताप॥

मूल्य नहीं जो आयगा, मां को होगा रोष।
मेरी मां के रोष से, नहीं मुझे सन्तोष॥

'चन्दन' लिखना है मुझे, चौथा चरण पवित्र।
चित्र सामने आयंगे, उसमें बड़े विचित्र॥

४ चौथा चरण

चार मार्ग में भाव का, कहलाता प्राधान्य ।
'चन्दनबाला-चरित' में, चरण तूर्य सम्मान्य ॥

इसमें देगी 'चन्दना' महावीर को दान ।
किया आंसुओं ने सभी, दुनिया का कल्याण ॥

आदि दुःख, दुख मध्य है, अन्त दुखों का अन्त ।
'चन्दनबाला का चरित', रोचक है अत्यन्त ॥

सन्त पढ़ो, सतियां पढ़ो, पढ़ो गृहस्थी लोग ।
पढ़ने-सुनने से इसे, कट जाते भव-रोग ॥

जैसे दर्शन चान्द का, पा देता है ठण्ड ।
गुणियों के गुण-गान से, मिलती शान्ति अखण्ड ॥

समाचार सुनते सुनवाते, जहां परस्पर लोग खड़े।
क्यों जी! क्या है? हुआ और क्या? लगे पूछते बड़े-बड़े॥
दासी ने अपकारी वेश्या– पर कर दिखलाया उपकार।
चमत्कार से नगर-नायिका– के जीवन का किया सुधार॥
हाथ फिराकर घाव भर दिये, हुई वेदना क्षण में शान्त।
शीलवती कन्या का अद्भुत, बिल्कुल ताजा है वृत्तान्त॥
कानों सुना नहीं है बिल्कुल, सारा आंखों देखा हाल।
'कौशाम्बी' के चौराहे पर, अभी-अभी यह हुआ कमाल॥
शास्त्रों में सुनते रोजाना, देखा यह प्रत्यक्ष प्रभाव।
उसका, उसके पूज्य पिता का, 'चन्दन' कितना भला स्वभाव!!

धर्मात्मा धनावह

'कौशांबी' में सेठ 'धनावह', धर्मात्मा भारी धनवान।
घर में सारे सुख थे केवल, घर में नहीं हुई सन्तान॥
सुन करके ये सारी बातें, लगे सोचने है अच्छा।
लड़की मुझे अगर मिल जाए, मानो मुझे मिला बच्चा॥
धर्म-कार्य करने में मुझको, सती सदा देगी सहयोग।
सदुपयोग धन का हो जाए, मिल जाए सुन्दर संयोग॥
बेटा हो या बेटी हो फिर, दोनों में हो कोई एक।
घर की शान, वही सुख दाता, पूरा-पूरा जो भी नेक॥

शीलवती है सत्यवती है, इससे क्या जो लड़की है ॥
धर्म-टेक है बहुत नेक है, बहुत बड़े ही घरकी है ॥

लगता है कि कर्म-चक्र ने, इसे विपद में डाला है।
बहुत देर तक राहु चांद को, कब पर ग्रसने वाला है ॥

मेघ रहेंगे घेरे कब तक, दिनकर के उजियाले को।
जगत जान ही जाएगा इस- हीरे कीमत वाले को ॥

अथवा आत्म-शक्ति जो इसने, लोगों को दिखलाई है।
वानर-सेना रक्षक बनकर, तभी सामने आई है ॥

ऐसी उस उत्तम कन्या को, सुता बनाना अच्छा है।
बीस लाख सोनैये देकर, घर में लाना अच्छा है ॥

आया उसी स्थान पर चलकर, जहां खड़ी 'चन्दनबाला'।
खड़ा हुआ है रथिक पास में, बनकर उसका रखवाला ॥

किसे तोल से, किसे मोल से, किसे बोल से जाना जाय।
चख कर किसे, किसे सूंघ कर, बतलाने के बड़े उपाय ॥

गति से, मति से, कृति, आकृति से, व्याहृति से व्यवहृति से फिर।
अथवा श्रुति से— संगति से है, पहचान लिया है जाता नर ॥

नीची आंखें किये खड़ी थी, रुक-रुक करती एक पुकार।
'मैं दासी बिकने को आई, 'कौशांबी पुर' के बाजार ॥

बिक मत घर चल

बोला रथी---सुनो प्रिय पुत्री! वेश्या का कर दिया सुधार।
मेरी पत्नी का कर देना, तुझे पड़ेगा अब उद्धार॥
बिक मत, वापस चल अपने घर, बेटी ! मेरा कहना मान।
गुण पहचान सकेगा तेरे, जो होगा खुद ही गुणवान॥
"पूज्य पिता जी! धैर्य रखो, अब- बिकने दो मुझ को बाज़ार।
घर जाने से माता जी फिर, होंगी गुस्से बिना शुमार॥"

'धनावह' से बात

इतने में ही 'सेठ धनावह', आकर खड़ा हो गया पास।
ज्यों-ज्यों आता पास उसे त्यों, मिलता जाता आत्म-प्रकाश॥
सचमुच ही है ऊंचे कुल की, ऊंचा इसका शील-स्वभाव।
अपलक्षण का इसके तन पर, नज़र आ रहा स्पष्ट अभाव॥
किसी अज्ञात विपद के कारण, बिकने को मजबूर हुई।
सत्य-शील की किन्तु लालिमा, किंचित भी नहिं दूर हुई॥
पड़ा धूल में रत्न भले हो, रत्न रहेगा फिर भी रत्न।
घट सकता न मूल्य ज़रा भी, कितना कोई करले यत्न॥
मुख पर कितनी पावनता है, सच्ची शील निशानी है।
बीसों बेटों से भी बढ़कर, बेटी मुझे बनानी है॥

मानव ही क्या देख दुखी को, देता जो न सहारा है।
मानवता से बढ़कर कोई, धर्म और नहिं प्यारा है॥
मुझको मानव-धर्म निभाना, मेरे उर की है आवाज।
बिकने को जो रत्न आ गया, इसमें भी है कोई राज॥

"बीस लाख सोनैये तेरा, मूल्य सुना क्या यह सच है?
सच है, तो मैं दूंगा इसमें, मुझे नहीं कुछ ननु नच है॥"

"आप कौन हैं और किस लिये, ले जाते हैं अपने घर?
बीस लाख सोनैयें देकर, काम कौनसा लेंगे फिर?
क्या आचार-विचार आपका? पहले यहां कीजिये स्पष्ट।
जिससे मुझे आपको कुछ भी, नहीं भोगना हो फिर कष्ट॥"

"प्रश्न सामयिक करके तुम ने, मति का परिचय दिया यहां।
पानी पीकर जात पूछिए, इसमें होता भला कहां॥
धर्म-साधना करना मेरे, घर का है आचार-विचार।
बारह व्रतधारी 'श्रावक' हूं, सन्तति बिन सूना घर-बार॥
घर पर आया अतिथि न कोई, घर से जाये खाली हाथ।
ऐसा कोई मिला नहीं जो, मेरा दे सकता हो साथ॥
केवल मेरी पत्नी है वह, पूर्ण नहीं देती सहयोग।
सचमुच नहीं हुआ करते हैं, एक सरीखे सारे लोग॥

मुख्य कार्य तो यही रहेगा, और रहेंगे घर के काम।
काम किया फिर बैठ शान्ति से, लिया करो प्यारा प्रभु-नाम॥
तेरे सत्य-शील में कोई, डाल नहीं सकता बाधा।
पूर्ण करो विश्वास और क्या, बतलाऊं बेटी ! ज्यादा॥

रथिक से बात

'वसुमति' बोली पूज्य पिता जी! धैर्य रखा तो काम हुआ।
जीवन भर के लिये समझिए, मुझे पूर्ण आराम हुआ॥
इनकी सेवा करने का शुभ, अवसर मुझको होता प्राप्त।
बिक जाने से मां के मन का, भ्रम भी होगा स्वतः समाप्त॥'
"रोने लगा रथिक, देखो यह, निकल रहा हाथों से रत्न।
हाय! आह! भगवान! कौनसा, किया जाय अब यहां प्रयत्न॥"
"नहीं बेचते आप मुझे मैं- खुद ही बिकती हूँ बाजार।
आप आइये पहुंचा कर घर, 'सेठ धनावह' के घर-द्वार॥

सेठ रथी भाई-भाई

आगे सेठ बीच में 'वसुमति', पीछे-पीछे रथिक चला।
दुख के मारे पैर रथिक के, रुकते भरता गया गला॥

आदर पूर्वक बिठलाया है, दोनों को ही अपने घर।
खोल तिजोरी तीन लाख हैं– सोनैये देता गिन कर॥

रथी सोचता मन ही मन यों, सेठ भद्र है, भोला है।
बुरा न मुझ-सा जग में कोई, मुझसा खोटा बोला है॥

"पहुंचाने के लिये यहां मैं, आया, नही चाहिये धन।
मेरे से दुर्भागी के घर, नही लगा था उसका मन॥

यहां रहेगी बड़े मजे से, मुझको भी होगा आनन्द।
और आपके साथ जुड़ेगा, भाईचारे का सम्बन्ध॥"

तीनों की बातें

'वसुमति' बोली–'लिया न धन जो, मां को होगा क्या सन्तोष।
गिना जायगा पूज्य पिता जी! इन में भी मेरा ही दोष॥
इस घर में उस घर में अन्तर, अन्तर नहीं मानता है।
अन्तर में अन्तर हो जिसके, अन्तर वही जानता है॥
यह न खरीद रहे हैं मुझको, बेच रहे है आप नहीं।
दोनों ही धर्मात्माओं से, हो सकता यह पाप नहीं॥
ये सोनैयें दिए जा रहे, मां के चरणों में उपहार।
इसीलिये इनको लेने में, नहीं आप कुछ करो विचार॥

ले जाएंगे आप अकेले, कैसे इतना वज़न उठा।
पहुंचाने के लिए सेठ ने, फ़ौरन साधन दिए जुटा॥

'सेठ धनावह' बोला हम अब, आज हुए भाई - भाई।
नई चेतना - नई प्रेरणा, पुत्री पाने से पाई॥

मिले गले से गला लगाकर, रथी आ गया निज आवास।
कर्म-कहानी का बाक़ी है, लेना लम्बा श्वासोच्छ्वास॥

'मूला सेठानी' का स्वभाव

जितना सेठ भला था उतनी- सेठानी थी बड़ी बुरी॥
जितनी चमक-दमक देती है, उतनी होती तेज़ छुरी॥

किसी ग़रीब सेठ की लड़की, बड़े सेठ की पत्नी बन।
स्वतः मालकिन हो सकती है, किन्तु नहीं आ सकते गुण॥

इसे बड़ा अभिमान हुआ था, इतना धन पा जाने का।
उलटा असर हुआ करता था, बार-बार समझाने का॥

डांट-डपट दिखलाती भारी, नौकर - चाकर डरते थे।
करते जो भी काम किन्तु वे, सदा अधूरा करते थे॥

उन्हें नहीं देती सुविधाएं, खाने - पीने - रहने की।
उनकी आदत थी सहने की, इसकी आदत कहने की ॥
धर्म-भावना के वर्धन में, नहीं सेठ का देती साथ।
पतिव्रता बनने की केवल, ऊंची बहुत बनाती बात ॥
जितना नम्र सरल धार्मिक, 'सेठ धनावह' गुणधारी।
उतनी कठिन कुटिल पापात्मा, मिली कर्कशा है नारी ॥

प्रथमग्रासे मक्षिकापातः

'वसुमति' को लेकर अब आया, सेठ स्वयं 'मूला' के पास।
कर प्रणमन मां के चरणों में, खड़ी हो गई ले उल्लास ॥
भाग्यशालिनी लक्ष्मी हो तुम, इसीलिये लक्ष्मी पाया।
अपने तो सन्तान नही है, कन्या को मैं ले आया ॥
पुत्री तुल्य मानना इससे- धर्म पूर्ण रखना सम्बन्ध।
सुधर जायेगा अपने घर का, इसके द्वारा पूर्ण प्रबन्ध ॥

"देख रही थी सोच रही थी, बहुत सुन्दरी है कन्या।
इसके सम्मुख मैं सेठानी, लगती हूं बिल्कुल वन्या ॥
पति बतलाते इसके द्वारा, घर का होगा और सुधार।
पुत्री इसे बता कर लाये, लगता है कुछ और विचार ॥

ऐसी सुन्दरता पर चन्चल, कौन नहीं हो जाएगा।
जो मुझको सन्देह हुआ है, वही सामने आएगा॥
अभी बोलना ठीक नहीं है, कथन सेठ का है स्वीकार।
बोलो—अच्छा मेरे सिर से, कमती हो जाएगा भार॥

'वसुमति' से 'चन्दनबाला'

'वसुमति' का सत्कार किया कर- दिया और सम्पूर्ण प्रबन्ध।
खाने-पीने रहने - कहने, करने में न ज़रा प्रतिबन्ध॥
'वसुमति' जैसे घर निज रहती, रहती वैसे यहां सदा।
कहा दुःख ने एक बार तो, लेता हूं मैं अभी विदा॥
उठती सब से पहले करती, अपने हाथों से घर-काम।
नौकर-चाकर दास-दासियां, खुश-खुश रहने लगे तमाम॥
श्रम करने में शर्म नहीं है, शर्म पाप से की जाती।
अगर काम से इज़्ज़त जाती, तो वह हाथ नहीं आती॥

'लगे पूछने सेठ एक दिन, पुत्री ! तेरा क्या है नाम ?
उसी नाम से घर के सब जन, तुम्हें पुकारें दें सम्मान॥
'वसुमति' बोली हाथ जोड़ कर, करती हुई उन्हें प्रणाम।
'मेरा नाम वही है मेरे- पिता बोल कर कहदें काम॥

घिसो-पिसो काटो चन्दन[1] को, चन्दन करता शैत्य प्रदान।
अपकारी पर उपकृति करने- वाली सचमुच उसी समान॥
इसीलिये अब से इस घर में, 'चन्दनबाला' तेरा नाम।
इसी नाम से बोलाकर ही, जब-जब लिया जायगा काम॥"

'चन्दनबाला' नाम सेठ का, रखा हुआ ही हुआ प्रसिद्ध।
इसी नाम से चन्दनबाला, 'चन्दन' हुई सिद्ध-सम्बुद्ध॥

व्रतधारी का जीवन

'सेठ धनावह' धर्म-कार्य में, पुत्री से लेता सहयोग।
व्रतधारी श्रावक को रखना, होता बहुत बड़ा उपयोग॥

व्रत लेना, व्रत-रक्षा करना, व्रत की वृद्धि किये जाना।
व्रत ही जीवन है वास्तव में, जिसने भी बस पहचाना॥

खाता व्रती, अव्रती खाता, खाने-खाने में है फ़र्क।
क्या? कब? क्यों? खाना उत्तम? इतना-सा उठता है तर्क॥

दृष्टिकोण बदला जाता है, बदल दिया जाता है ढंग।
सचमुच व्रतधारी का जीवन, हो जाता है बड़ा सुरंग॥

---

१. स्थानभ्रंशान्नीचसंगात् खण्डनात् घर्षणादपि।
अपरित्यक्तशीरन्यं, वंद्यते चन्दनं जनैः॥

व्रत का ढोंग न समझो, समझो, जीना जीवन सहित विवेक।
कृति समझो, कृति का फल समझो, जी जाए जो कृति प्रत्येक॥

सेठ प्रसन्न रहा करता था, पास-पड़ोसी खुश रहते।
जो दुख-दर्द किसी को होता, 'चन्दनबाला' से कहते॥

'चन्दनबाला' सान्त्वना साहस, दवा और देती सहयोग।
पाने वाले, सुनने वाले, सारे धन्य बताते लोग॥

असहिष्णुता एक अवगुण

गुण न सहे जाते दुनियां से, यह भी अवगुण बहुत बड़ा।
इसीलिये होता है निश-दिन, घर-घर में भारी झगड़ा॥

ईर्ष्या नहीं किसी से हो जो, ऐसा मानस है विरला।
एकनाथ पर थूका जाता, नहीं झरोखे से कुरला॥

जलन उठा करती है सुनकर, किसी व्यक्ति का मान विशेष।
ईर्ष्या से कम्पन अनुभवते, देखो सारे आत्म-प्रदेश॥

गुणी जनों का आदर करना, बहुत बड़ा गुण है 'चन्दन'।
'चन्दनबाला' करती अपने, घर पर सब का अभिनन्दन॥

छोटे - बड़े सभी आते हैं, आते युवक-युवतियां भी।
सुनते और सुना जाते कुछ, इधर-उधर की बतियां भी॥

लेना योग्य समाहूं कोई, कोई दर्शन कर जाता।
कभी-कभी 'चन्दनबाला' का, सारा आंगन भर जाता॥

सुनी-हुई सब मान न सकते, इसीलिये जन जाते देख।
अल्प उमर में भी अद्भुत, कितना विकसित बना विवेक॥

धन्य! नगर 'कौशांबी' सारा, धन्य! 'धनावह' सेठ बना।
धन्य! वही 'चन्दनबाला' का, जिसने भी शुभ नाम सुना॥

जलती मन ही मन में 'मूला', उसके मन था भय भारी।
सुख-सुहाग खोना जाएगा, कन्या है यह बीमारी॥

रूपवती है युवती है गुण- वती सती है सुखकारी।
पुत्री बन कर आई है बन- जाएगी निश्चित प्यारी॥

भय को दूर हटाने खातिर, 'मूला' ईर्ष्या करती थी।
लेकिन 'सेठ धनावह' से वह, बहुत नहीं कुछ डरती थी॥

किए काम को बुरा बताती, देती अपने आप बिगाड़।
कुत्तों से नुकसान कराती, देती घर के खोल किवाड़॥

नमक डाल देती पीछे से, पीछे कहती साग खराब।
क्या खाऊं? अब किस से खाऊं? मुझे चाहिए अभी जवाब॥

दूध बिल्लियों से गिरवा कर, मढ़ती इसके सिर अपराध।
बुरा बनाने की सब विधियां, दुष्टा 'मूला' को थीं याद॥

दान अतिथियों को देने से, मन में रहती थी नाराज।
कल तो इन्हें दिया था इतना, इतना फिर दे डाला आज !!
इसे दिया, इसको देना था, इतना ही देना था दान।
इतना-इतना समझाती हूँ, लेकिन कब आएगा ज्ञान ?

'चन्दनबाला' का गुण

'चन्दनबाला' नहीं बोलती, पी जाती है कड़वे घूट।
एडी मारे जाने पर क्या, अरड़ाया करते है ऊंट ?
"अच्छा आगे तो माता जी! पूरा रखा करूंगी ध्यान।
ध्यान दिलाते रहना मुझको, आप बड़े ही है गुणवान ॥"
नहीं क्रोध करती है बिल्कुल, नहीं दूसरों से कहती।
'चन्दनबाला' कष्ट मानसिक, सारे समता से सहती ॥
धर्मवान गुणवान व्यक्ति के, जीवन में ये आते कष्ट।
नहीं बोलना सब, कुछ सहना, 'चन्दन' उत्तर बिल्कुल स्पष्ट॥

दासी की दक्षता

'मूला' के घर पर रहती थीं, दासी एक बड़ी ही दक्ष।
उसने सेठानी के लक्षण, देख लिये सारे प्रत्यक्ष ॥

दासी बोली—'सेठानी जी! इसे सताती हैं क्यों आप ?
आप भली को बुरी, बताकर, करती हैं क्यों भारी पाप ?
'चन्दनबाला' सब की सेवा, करती रहती है दिन रात।
कटुक वचन भी नहीं बोलती, देखी-सुनी किसी के साथ ॥

वह दिन दूर नहीं

'मूला' बोली—अय दासी! सुन, तुझे पता है, है यह कौन ?
मीठी-मीठी लगती सबको, मुझको लगती लेकिन लौन ॥
जाति-पांति कुल नहीं बताती, सहती मेरे कड़वे बोल।
कोई नहीं समझता इसको, समझ रही मैं सारी पोल ॥
इसे पुरुष की चाह नहीं हो, क्या यह हो सकती है बात ?
इसे व्याहने किसकी और- कहां से आयेगी बारात ॥
दूल्हा मेरा सेठ बनेगा, और बनेगी यह दुल्हन।
तुम गावोगी गीत रीत के, देखो दूर नहीं वह दिन ॥

अपने ही हाथों

"दासी बोली सेठानी से, व्यर्थ बनाती हो क्यों बात ?
अपना बुरा सोचती हो क्यों, ऐसा फिर अपने ही हाथ ॥

'चन्दनवाला' पूर्ण सती है, इसमें नहीं ज़रा सन्देह।
मैलापन छा जाता जिस में, 'चन्दन' विन्दु मात्र हो स्नेह॥
नहीं गुणों को अवगुण कहकर, दुःखी करो वेचारी को।
वड़ा वुरा होगा सेठानी! दुःख दे नारी, नारी को॥

नारी के प्रति नारी को जो, ममता जागृत नहीं हुई।
कैसे इज़्ज़त वच सकती है, जो है थोड़ी रही हुई॥

अगर किसी नारी ने अपने, शील-धर्म को रखा अखण्ड।
सुनो समूची स्त्री-दुनिया को, उस पर होगा व्रड़ा घमण्ड॥
'कौशांवी' के घर-घर पर है, 'चन्दनवाला' की चरचा।
अभी चौक में दिखलाया था, नगर-नायिका को परचा॥
'चमत्कार को नमस्कार है', विल्कुल ठीक कहावत है।
अंकुश से गज वश कर लेता, सच्चा वही महावत है॥"

'मूला' वोली—रहने दे वस, दासी आखिर दासी है।
सही मानले मैं कहती हूं, अस्सी पांच पिचासी है॥
गुण है नारी की कोमलता, अवगुण दिल की दुर्वलता।
इसीलिये तो पुरुष यहां पर, रहता है इसको छलता॥"

आत्म-धर्म पर शील-धर्म पर, मां की शिक्षा पर विश्वास ।
'चन्दनबाला' लेती देखो, सुख से निर्भयता की सांस ॥

आप भला तो जगत भला है, बुरा रखेगा बुरी नजर ।
मुंह में नमक छुपाकर कोई, कभी न कहता उसे मधुर ॥

'चन्दनबाला' खड़ी हुई थी, अभी-अभी ही करके स्नान ।
केश नूखते जाते थे जब, लगा रहा मन प्रभु का ध्यान ॥

इतने ही में 'सेठ धनावह', आया है चल बाहर से ।
खड़ी देखकर निज पुत्री को, बोला सेठ मधुर स्वर से ॥

"स्नान किया तूने यदि है कुछ, शेष बचा हो पानी गर्म ।
तो मुझको दे धोलूं मैं भी, पैर जरा हो जाएं नर्म ॥"

सुनकर 'चन्दनबाला' तत्क्षण, एक पात्र में लाई जल
चन्दन-चौकी लाई लाई- बरतन धोने चरण कमल ॥

कहा–'पिता जी! आप बैठिये, मैं धोए देती हूं पैर ।
अपने आप सदा धोते हैं, आज सुता पर करदें महर ॥

बोला सेठ—कहा क्या बेटी, तेरे से धुलवाऊं पांव ?
सिर पर भार चढ़ाऊं भारी, मेरी अक़ल गई क्या गांव ?

हलका कार्य गिना जाता है, पुत्री से धुलवाना पांव।
सम्भव नहीं कभी हो सकता, मुझे थमादे सारे ठांव॥
जिसने अपनी महिमा द्वारा, वेश्या का कर दिया सुधार।
उसने जल ला दिया मुझे यह, मान रहा भारी आभार॥

'चन्दनवाला' वोली—क्या मैं, नहीं आपकी हूँ सन्तान?
पितृ-चरण प्रक्षालन को क्यों, हलका वतलाते इनसान?
सेवा जो कर सकता वेटा, वेटी भी कर सकती है।
वेटों-सा अधिकार वेटियां, सदाकाल से रखती हैं॥
मात-पिता की सेवा द्वारा, ऋण हलका करती सन्तान।
भार आप पर चढ़ता कैसे? ऐसा मुझे दीजिये ज्ञान॥
मंगलमयी मुझे वतलाते, सेवा से वंचित रखते।
'चन्दन' लेखक एक कलम-: स्याही से सर्वाक्षर लिखते॥
अच्छा-वुरा, नीच या ऊंचा, नहीं गिना सेवा का धर्म।
सेवक सदा समझता मन में, सेवा करना अपना कर्म॥
नहीं रोकिये आप पिता जी! पैर मुझे ही धोना है।
'चन्दनवाला' को यह स्वर्णिम, अवसर आज न खोना है॥"

'अहा सुहं' कहकर दिया, धोने का आदेश।
'चन्दनवाला' के अभी, खुले हुए थे केश॥

सेठानी का भ्रम

सेठ बैठता है चौकी पर, पांव पराती में रखकर।
'चन्दनबाला' चरण धो रही, दोनों हाथों से जी भर ॥
अनायास ही आज मुझे तो, सेवा का संयोग मिला।
मेरा कहना पूज्य पिता जी, मान किया है बहुत भला ॥

पिता सोचते—ऐसी पुत्री, मिली मुझे किस्मत है तेज़।
जिसको पढ़ना होगा उसको, यही खोलना होगा पेज ॥

हिलने से आते थे मुख पर, लम्बे-चिकने कृष्ण चिकुर।
शुद्ध स्नेह वश उन्हें सेठ ने, हाथों से कर दिया उधर ॥

अर्थ का अनर्थ

केश हटाते देख हाथ से, 'मूला' दग्ध हुई मन में।
कभी न देखा कहीं न देखा, मैंने ऐसा जीवन में !!
जब मैं देख रही हूँ तब भी, मुख पर हाथ फेरता सेठ।
क्या-क्या करता होगा आखिर, नर यह कहीं अकेला बैठ ॥
दबते हैं - सकुचाते हैं यह, फिर भी आज किया साहस !
जितना मुझे चाहिये 'चन्दन', उतना हाथ लगा है बस ॥
शर्म नहीं संकोच नहीं, खुश- होकर कर फिरवाती है।
फिर भी इस दुनिया में देखो, बड़ी सती कहलाती है !!

मेरे सुख का कांटा मेरी, सौत बनेगी आखिर में।
मुझे न रहने दिया जायगा, इक दिन मेरे ही घर में॥

मलिन मन का चिन्तन

हृदय मलिनता से 'मूला' ने, समझ लिया इसको अपवित्र।
पूर्ण पवित्र चित्र भी 'चन्दन', लगता ऐसा कभी विचित्र॥

पांव धुलाकर भोजन पाकर, सेठ गया है निर्मल मन।
'चन्दनबाला' केश सुखाने, खड़ी हुई ले अपनी धुन॥

"लिया जाय अब पन्थ कौन-सा, जिससे कांटा जाय निकल।
सांप मारकर लकड़ी तोड़ी, इसमें कहिये कौन अक़ल॥
अगर निकालूंगी घर से तो, देंगे इसको और मकान।
सुविधाएं होंगी, दोनों का, पूर्ण सुरक्षित होगा स्थान॥
घर पर मैं हूं नौकर-चाकर, दास-दासियां लोग अनेक।
चलते-फिरते सोते-जगते, इनको हम लेते है देख॥

शस्त्र-प्रयोग करूं तो डर है, कहीं नहीं खुल जाये भेद।
करवा सकता सेठ मुझे फिर, सुख से ही आजीवन क़ैद॥"

नहीं समझ में कुछ भी आया, 'मूला' दहती रहती है।
नदियां और नारियां देखो, टेढे रस्ते बहती हैं॥

बिगाड़ और उजाड़

'चन्दनबाला' से सेठानी, करने लगी घृणित व्यवहार।
नहीं किसी से कहती 'चन्दन', सहती ले प्रभु का आधार॥
किये काम को बुरा बताकर, पुनः वही करवाती काम।
काम किसी के द्वारा बिगड़े, लेती एक इसी का नाम॥

जब से यह आई है घर में, सभी व्यवस्था बिगड़ गई।
सेठ बताते सती इसे पर; मेरी दुनिया उजड़ गई॥

'चन्दनबाला' से सब खुश हैं, 'मूला' क्यों इससे नाराज़?
सेठ सोचता रहता किन्तु न, कोई लगा सका अन्दाज़॥

"बोला सेठ—'सुनो सेठानी! मुझको बाहर जाना है।
तीन-चार दिन लग जायेंगे, काम एक कर आना है॥"

घर से सेठ चले जाने से, 'मूला' का मन फूल उठा।
दुख देने के लिये सुता को, लिए सभी समान जुटा॥

कहा किसी से—'सेठ नहीं है, इसीलिये अव कम है काम।
अपने-अपने ग्राम जाइये, छुट्टी ले करिये आराम॥

किसी-किसी पर नाखुश होकर, घर से वाहर दिया निकाल।
समझ नहीं पाए यह नौकर, सेठानी की क्या है चाल॥

नहीं उपस्थिति रही सेठ की, दो ही दो हैं अव घर में।
कार्यक्रम तैयार कर लिया, 'मूला' ने निज अन्तर में॥

द्वार बन्द कर लिये कहीं से, कोई आ न सके भीतर।
'चन्दन' सुन भी नहीं सकेगा, कोई चिल्लाए तीतर॥

'मूला' और 'चन्दनबाला'

"बोली अब 'चन्दनवाला' से, तू आई है वन कर सौत।
सारे घर की वनी मालकिन, बनकर आई मेरी मौत॥
जाति-पांति का, मात-पिता का, नाम-ठाम का नहीं पता।
क्यों आई? क्या करने आई? क्यों रहती है आज वता?"

"नाम 'चन्दना' दिया आपने, मात-पिता मेरे हैं आप।
पुत्री घर में ही रहती है, क्या-क्या और वताऊं साफ़॥"

'चन्दनबाला' के उत्तर से, 'मूला' इकदम कड़क उठी।
मानो घृत की आहुति पाकर, आग और भी भड़क उठी॥

जिससे पाप कमाती उसको, कहती मुख से पूज्य पिता।
तेरे जैसी सतियां ऐसा, जीवन सकती यहां विता॥

लड़की-वहन वनाकर करते, दुराचार फिर उसके साथ।
तेरे ढोंगी दुष्ट पिता के, मैंने देख लिये हालात॥

पांव धुलाते समय सेठ ने, तेरे मुख पर फेरा हाथ।
झूठ कहो हो सकती कैसे, जग में आंखों देखी वात?

'चन्दनवाला' वोली–मुंह पर, हिलने से आए थे केश।
केशों के कारण धोने में, होता देखा विघ्न विशेष॥

इसीलिए करुणा प्रेरित हो, केश किए थे ऊपर को।
मत वदनाम कीजिये मुझको, पूज्य पिता जी को, घर को॥

जो भी आप परीक्षा लेंगी, देने को हूँ मैं तैयार।
सच्ची, विल्कुल सच्ची पुत्री, मां! कुछ भी मत करो विचार॥"

नहीं प्रभाव पड़ा 'मूला' पर, था सन्देह और था क्रोध।
वोध तभी लग सकता देखो, सुनने वाला हो अक्रोध॥

"नहीं शर्म संकोच जरा भी, जैसे केश संवरवाये।
वेटी ऐसी नहीं चाहिये, हाथ पिता से फिरवाये॥

कहती और परीक्षा करलो, अभी परीक्षा लेती हूँ।
तेरे किए गए कर्मों की, कड़ी सजाएं देती हूँ॥

शिरोमुण्डन का दण्ड

ऐसा कहकर कैंची लाई, बोली—केशों का है दोष।
इन्हें न सिर पर रहने दूंगी, तभी मुझे होगा सन्तोष॥

सुनकर 'चन्दनबाला' बैठी, शक्ति - परीक्षण देने को।
लम्बे-घुंघराले केशों को, 'मूला' बैठी लेने को॥

चिकने, लम्बे, सुन्दर, कोमल, केश स्त्रियों को प्रिय होते।
कितना समय लगा देती हैं, केवल इनको ही धोते॥

बड़े प्रेम से पाले जाते, और बढ़ाये जाते हैं।
तरह-तरह के जूड़ों में फिर, बांध सजाये जाते हैं॥

केशों की सुषमा से सुषमा, स्त्री की कहलाती सारी।
कम केशों वाली नारी तो, शरमा जाती बेचारी॥

नायलोन के केश लगाकर, लम्बे बाल बनातीं फिर।
नहीं युवतियां कभी देखलों, अपना यहां मुंडातीं सिर॥

केशों का अपमान स्त्रियों के, लिये असह्य बड़ा भारी।
सुन्दर केशों वाली नारी, मानी सौभागिन नारी॥

आगे-पीछे पिनें लगातीं, नहीं बिखरने देतीं केश।
केशों द्वारा दिया जा रहा, सुन्दरता का शुभ सन्देश।

निर्भय बनकर कटा रही है, 'चन्दनबाला' अपने केश।
बड़ी ढीठ लड़की है देखो, 'मूला' कहने लगी विशेष॥

"जिससे मेरी मां राज़ी हो, राज़ी हूं मैं भी उसमें।
केश काटती हैं तो काटो, ऐतराज़ क्या है इसमें॥

केश काटते समय मुझे तो, होने दिया न किंचित कष्ट।
कैंची कितनी साफ़ चलाई, मैं हूं इसीलिये सन्तुष्ट॥

केश काटने से ही मां के, मन का तो सन्देह मिटा।
मेरे सिर से भार हटा तो, धोने का भी काम घटा॥

हथकड़ियां और बेड़ियां

बोली—तेरे मुख पर हिलकर, कभी नहीं आएंगे केश।
नहीं संवारेंगे पति मेरे, नहीं मुझे होगा अन्देश॥

ऐसे कहकर झांका मुख को, हंसती है 'चन्दनबाला'।
भली अगर होती तो दिल में, कुछ तो उठती दुख-ज्वाला॥

कुलटा के सिर अगर केश हों, नहीं केश हों तो क्या बात।
एक हाथ जो नाक काट दो, बढ़ता उसी वक्त दो हाथ॥
केश काट लेने से तेरी, नहीं परीक्षा हुई समाप्त।
तू तो ऐसे बैठी जैसे, बैठे हों तीर्थङ्कर आप्त॥
नहीं राग-है नहीं रोष है, चाहे काट गिराए केश।
किन्तु ठहर जा तेरे खातिर, दुष्टे ! अभी बहुत है शेष॥
पांवों में बेड़ी डालूंगी, हथकड़ियां इन हाथों में।
मन में कुछ अनुमान कीजिये, भय कितना इन बातों में॥

'चन्दनबाला' बोली–मां जी! जो कुछ आप करें मंजूर।
बेटी मां की आज्ञा से तो, देखी कभी न जाती दूर॥

ताले लगा दिए हैं भारी, डाल बेड़ियां हथकड़ियां।
तब रे ! कैसे चलती होंगी, बन्द हुई होंगी घड़ियां॥
थकी नहीं वे चलती लेकिन, रुकी देखने मां का खेल।
मालिक ने यों समझा शायद, भूल गए दिलवाना तेल॥

सूर्य बादलों से ढंककर मुंह, चला बहुत धीरे टिक कर।
सहा 'चन्दना' ने होगा पर, हमें दुःख होता लिख कर॥

काछ और भोंयरा

'मूला' बोली–तेरे तन पर, वस्त्र नहीं लगते अच्छे।
उसे बनादी ऐसी जैसे, जन्म समय होते बच्चे॥

फटा-पुराना मैला चिथड़ा, लेकर एक लगा दी काछ।
नहीं कभी जो देखा हो तो, देखो जी ! संशय का नाच॥

मां की पूर्ण कृपा मेरे पर, लंगोटी तो दी है बांध।
भले कलंकित कहता कोई, दर्शनीय है लेकिन चान्द॥

सोच रही है 'मूला' इसको, बाहर रखना ठीक नहीं।
मानव जो अपराधी होता, वह होता निर्भीक नहीं॥

कब तक घर को बन्द रखूंगी, खुलने से कोई आकर।
मेरी निन्दा किया करेगा, इसे जायगा छुड़वाकर॥

किसी भोंयरे में अब इसको, डाल दिया जाये तो ठीक।
बुरे काम करने की जग में, होनी चाहिये ऐसी सीख॥

अन्धकार से पूर्ण भोंयरा, लिया वहां तक इसे घसीट।
'चन्दनबाला' लगी सोचने, नहीं रही है मुझको पीट॥

खोल किंवाड़ भोंयरे के फिर, धसका कर अन्दर डाला।
बन्द किया दरवाजा देखो, लगा दिया भारी ताला॥

घर में भी ताला

पड़ी-पड़ी अब मर जाएगी, मेरा कांटा साफ़ हुआ।
सेठ चले जाने से दिल का, चाहा अपने आप हुआ॥
नहीं किसी को पता चलेगा, नहीं मुझे भी होगा दोष।
मैंने जीवित ही छोड़ा है, मन में मान लिया सन्तोष॥
आने वाले पूछेंगे ही, आप अकेली क्यों घर पर?
बाहर सभी गए क्या तेरे, इतने थे नौकर - चाकर॥
'चन्दनबाला' नहीं कहीं भी, जा सकती घर से बाहर।
इन प्रश्नों का देना होगा, मुझको फिर-फिर कर उत्तर॥
नहीं बांस हो नहीं बांसुरी, घर ही अपना करदूं बन्द।
पीहर जाना ठीक रहेगा, बिल्कुल अच्छा यही प्रबन्ध॥
बाहर से ही मुड़ जाएंगे, जब दरवाजा होगा बन्द।
नहीं किसी को कहीं जरा भी, 'चन्दन' आ सकती है गन्ध॥

सवा सौ ग्राम

'मूला' जितना कर सकती थी, उससे कमती नहीं किया।
देखो कितनी हो सकती है, नारी की भी क्रूर क्रिया!!

तेल छिड़क कर नहीं जलाया, नहीं गिराया कूएं में ॥
नहीं बन्द भी किया कोयले- वाले काले कूएं में ॥

नहीं मिलाया कुछ भोजन में, जिससे हो जाए प्राणान्त ।
गला घोंटकर क्षणभर में ही, नहीं कर दिया देखो शान्त ॥

किसी शस्त्र से नहीं किये हैं, किसी स्थान पर कोई घाव ।
सेर नहीं-अध सेर नहीं है, कोई पाव नहीं अधपाव ॥

टेढ़ा सवाल

'चन्दनबाला' की समता का, पाठक ! देखो बड़ा कमाल ।
क्रोध नहीं क्या आता उसको, टेढ़ा आता अभी सवाल ॥

अन्धेरे में पड़ी अकेली, जकड़ी है जंजीरों से ।
उसकी तुलना की जाएगी, तेजस्वी नरवीरों से ॥

पापिन 'मूला' के संशय ने, कष्ट दिया है बड़ा अवश्य ।
'जो कुछ होता अच्छा होता, इसमें भी तो छिपा रहस्य ॥'

'चन्दनबाला' नहीं जानती, पल के पीछे क्या पल है ।
फलवन नहीं लगी दिखने पर, बहुत दूर होता फल है ॥

कष्ट-उदय का काल अगर है, कष्ट-मुक्ति का भी है काल ।
समाधान ढूंढा जाता है, करता कोई खड़ा सवाल ॥

समय चाहिये धैर्य चाहिये, कष्ट-मुक्ति के लिए सदा।
'चन्दन' करता ही रहता है, कालचक्र कर्त्तव्य अदा॥

श्री महावीर का अभिग्रह

तप करते-करते बीते हैं, 'महावीर' के ग्यारह वर्ष।
किया अभिग्रह बड़ा कठिन ही, सारे सज्जन सुनें सहर्ष॥
"तेरह बातें मिल जाने पर, ग्रहण करूंगा मैं आहार।
वरना निराहार रह कर ही, चालू रखना मुझे विहार॥

१ २ ३
राजसुता अविवाहिता, सदाचारिणी साथ।
४ ५
पांवों में हों बेड़ियां, हों हथकड़ियां हाथ॥

६ ७ ८
शिर मुण्डित तन काछ हो, तीन दिनों की भूख।
९
उड़द बाकले सूप में, लिए खड़ी बिन चूक॥

एक पांव इस ओर हो, एक पांव उस ओर।
१०
घर बाहर भीतर नहीं, 'चन्दन' करना गौर॥

खड़ी प्रतीक्षा करती हो फिर, किसी अतिथि[११] के आने की।
हंसमुख[१२] आंखों में आंसू हों, वेला[१३] रवि ढल जाने की॥

ऐसी कन्या के हाथों से, पावूंगा जो मैं आहार।
'चन्दन' तभी सहज संभव है, मेरे द्वारा जगदोद्धार॥
इस जग में नर-नारी दोनों, रहते सदाकाल से साथ।
कैसे सम्भव हो सकता है, जगदुद्धार अकेले हाथ॥"

लिया अभिग्रह नहीं किसी से, पहले बतलाया जाता।
फल जाने पर स्वतः सभी के, सम्मुख ही पाठक ! आता॥
तपःसाधना मौन-साधना, सहित विचरते थे भगवान।
कैसे होगा पूर्ण अभिग्रह, इस पर कभी न देते ध्यान॥
तपके द्वारा तीर्थङ्कर का, हुआ बहुत ही क्षीण शरीर।
देव, मनुष्य हुए अति चिंतित, बच पाएंगे कैसे 'वीर?'
सूख जायगा कल्पवृक्ष यह, कैसे होगा जन-कल्याण?
जग में कोई रहा नहीं क्या, प्रभु को देने वाला दान?

देने वाले लोग बहुत हैं, नहीं अभिग्रह फलता है।
जिनवर क्या चलते हैं देखो, तपो-धर्म ही चलता है॥

कठिन 'अभिग्रह' फलने में, कठिनाई आया करती है।
इसे पार कर चन्दन' आत्मा, भव से पार उतरती है॥

सर्वस्व समर्पण

बड़े-बड़े दानी दुनिया में, दिया जिन्होंने भारी दान।
देने वालों—लेने वालों- दोनों का होता कल्याण॥
जिसके पास बहुत थोड़ा हो, उसमें से दे देना दान।
या सर्वस्व समर्पित करना, सबसे होता दान महान॥
खीर बहुत से देते मुनि को, 'शालिभद्र' ने दी थी खीर।
उसी खीर ने बदल दिखाई, देखो जीवन की तस्वीर॥
लिए बौद्ध के 'कौशांवी' में, घर-घर घूमा पिंड अनाथ।
अमर हो गई एक वस्त्र ही, देने वाली स्त्री की बात॥
आवश्यकताएं कम करके, कष्ट काल में जो हो दान।
प्यारे दाताओं! दे देना, इसी बात पर पूरा ध्यान॥
'कौशांवी' में लगे घूमने, महावीर घर-घर के द्वार।
किन्तु आज तक 'चन्दन' उनको, मिला नहीं वैसा आहार॥

'चन्दनवाला' का चिन्तन

'चन्दनवाला' पड़ी भूमिगृह, करती है प्रभु का ही ध्यान।
अनायास ही मुझे मिला है, ध्यान लगाने लायक स्थान॥

नहीं किसी के दर्शन होते, और नहीं आती आवाज़।
चिन्तन-मनन तथा अनुशीलन, मुझको कर लेना है आज॥
बिकवाया होता न रथिक की- स्त्री ने मुझको बाज़ार।
मिलता नहीं मुझे 'मूला' से, ऐसा आज बड़ा सत्कार॥

उगा सूर्य कब, छुपा सूर्य कब, पता नहीं पाया इसने।
खाया है क्या? खाना है क्या? आकर है पूछा किसने?
अन्धेरा था तलघर में पर, अन्तर में है उजियाला।
चिन्तन में तल्लीन बनी है, 'चन्दनमुनि' 'चन्दनबाला॥'

सेठ का आगमन

चौथे दिन मध्याह्न में, आया घर पर सेठ।
ताला देखा द्वार पर, रहे सड़क पर बैठ॥
क्या कारण है आज सब, चले गए हैं लोग?
द्वार बन्द ही कर दिए, ऐसा क्या संयोग?
"पूछा पास-पड़ौस में, मेरा घर क्यों बन्द।
दिया गया क्या आपके, हाथों बीच प्रबन्ध?"

"आज नहीं दिन तीन से, बिल्कुल बन्द मकान।
कौन कहां पर है गया, हमें नहीं है ध्यान॥

'चन्दनबाला' को भी हमने, नहीं नजर से अवलोका।
झूठी बात बताकर हमसे, दिया नहीं जाता धोखा॥"

इतने ही में घर का नौकर, आया यों बतलाता है।
दो ही दो थी घर में आखिर, आगे पता न पाता है॥

'चन्दनबाला' का पता

सेठानी को बुलवा ला, या- चाबी ले आ जा सुसराल।
उसके उठते बीच-बीच में, मन में संकट पूर्ण खयाल॥

सेठानी ने चाबी दे दी, किन्तु न घर पर आई आप।
आए कैसे चलकर ? जिसने, किया हुआ था भारी पाप॥
सोच रही थी—पता सेठ को, नहीं चलेगा तलघर का॥
आखिर में विश्वास सेठ को, करना होगा उत्तर का।
मैं कह दूंगी—कहीं भग गई, लेकर किसी व्यक्ति को साथ।
ऐरी-गैरी कन्याओं की, ऐसी ही तो होती बात॥

ताला खोल गया घर भीतर, 'चन्दनबाला' दिखी नहीं।
खीरे दिए बहुत ही लेकिन, रोटी अब तक सिकी नहीं॥

चन्दनवाला! चन्दनवाला! जोर-जोर से रहा पुकार।
छिद्रों में से शब्द पहुंचकर, देखो करते हैं झंकार॥

'मैं हूँ यहां दुःख मत करिये', उत्तर ऐसे आया फिर।
आता शब्द भोंयरे में से, सुन कर घूम उठा है सिर॥

पहुंचा पास भोंयरे के जब, स्पष्ट हो गया सारा ज्ञान।
'चन्दनबाला' तलघर में है, मेरा सच्चा है अनुमान॥

ताला तोड़ किवाड़ खोलकर, तब दी है फिर से आवाज़।
पूज्य पिता जी! मैं हूं अन्दर, धीरज से सुधरेगा काज॥

अन्धेरे में उतर सेठ ने, पाया 'चन्दनबाला' को।
जैसे-तैसे तलघर-बाहर, लाया 'चन्दनबाला' को॥

कुछ खाने को दें

देख दुर्दशा सेठ रोपड़ा, मूला! तेरी हुई न भूल।
भूल हुई मेरी मैं बाहर- गया आज कर रहा क़बूल॥

'चन्दनबाला' ने समझाया, रोना-धोना बन्द करो।
तीन दिनों की मैं भूखी हूं, उसका प्रथम प्रबन्ध करो॥

प्रथम हाथ जो वस्तु लगेगी, उससे पारण पारूंगी।
'चन्दन' फिर जो लेना होगा, उसके बाद विचारूंगी॥

"किन्तु रसोई घर पर भी तो, लगा गई 'मूला' ताला।
उड़द उबाले हुए पड़े थे, उन्हें सूप में ही डाला॥
उबले उड़द सूप में रखकर, ले आया पुत्री के पास।
एक ग्रास रख करके मुंह में, अपना पूर्ण करो विश्वास॥
उबले-सूखे उड़द अभी ये, ज्यादा खाना उचित नहीं।
खाना बेटी ! वही चाहिये, वर्ण-गंध-रस चलित नहीं॥
भूखी हो तुम तीन दिनों से, अन्तड़ियां भी हैं कमज़ोर।
लिया गया दुष्पाच्य खाद्य जो, पुत्री ! सह न सकोगी ज़ोर॥
जाता हूँ मैं अभी-अभी ही, लाऊं कोई चतुर लुहार।
हथकड़ियां तुड़वाकर फिर मैं, भोजन कर दूंगा तैयार॥"

इतना कह कर गये सेठ जी, देखो क़िस्मत करती ज़ोर।
'चन्दन' विश्व वंद्य श्री जिनवर, आएंगे अब करना ग़ौर॥

अतिथि-संविभाग व्रत

'चन्दनवाला' सूप पात्र ले, सोच रही है मन ही मन।
बिना अतिथि को दिये आज तक, मैंने नहीं किया भोजन॥

उड़द शक्तिशाली अन्नों में, शक्ति मुझे देगा सम्पूर्ण।
'चन्दन' चित्तान्तर्गत चिन्ता, हो जाएगी सारी चूर्ण॥

खिसक-खिसक कर दरवाजे तक, आकर बैठी चौखट पर।
देखो एक पांव था भीतर, एक पांव था फिर बाहर॥
आए कोई उत्तम अतिथि, उसको दूंगी पहले दान।
होगा इसी दान से 'चन्दन', 'चन्दनबाला' का कल्याण॥

केवल आंसू नहीं

'महावीर भगवान' आ रहे, लिए अभिग्रह के अनुसार।
देखो आकर रुके एक क्षण, 'चन्दनबाला' जी के द्वार॥

तप-पारण के अवसर पर मैं, महावीर को दूंगी दान।
दोनों ने ही लिया उसी क्षण, देखो दोनों को पहचान॥
हुआ उसे रोमांच हर्ष से, कहती भिक्षा लो प्रभुवर!
देख रही थी बाट यहां मैं, कोई आये अतिथि इधर॥
बड़ी कृपा की दुखिया पर, मेरे द्वारे आए आप।
दान लीजिये दया कीजिये, मेट दीजिये मेरे पाप॥
उड़द बाकुले ही हैं केवल, परमपिता! स्वीकार करो।
इस दुखिया की डगमग नैया, भव सागर से पार करो॥

नहीं देखते चीज आप तो, भाव देखने वाले हैं।
भक्ति भरे दाता के दिल का, चाव देखने वाले हैं॥

चमक चेहरा रहा हर्ष से, हाथों से अब दूंगी दान।
दान सुपात्र दिया हुआ ही, मानव का करता कल्याण॥
दाता दुर्लभ नहीं जगत में, दाता जन तो दिखें अनेक।
दुर्लभ बड़ा सुपात्र सन्त जन, 'चन्दन' मिलता कोई एक॥

'महावीर' ने सोचा—आतीं- बातें बारह स्पष्ट नजर।
किसी एक में भी अब कोई, कमी नहीं है रत्ती भर॥
केवल आंसू नहीं आंख में, लिया अभिग्रह फला नहीं।
ऐसे कोई काम अधूरा, करता जग का भला नहीं॥
बिना कहे ही, बिना लिये ही, लगे लौटने प्रभुवर 'वीर'।
'चन्दन' तत्क्षण 'चन्दनबाला', हो उठती है बड़ी अधीर॥

दुःख और हर्ष के आंसू

हाय! हाय! रे मैं दुर्भागिन, लौट गए घर से भगवान।
क्यों न लिया मेरे हाथों से, उड़द बाकलों का यह दान॥
भाग गये थे पिता छोड़ कर, तब भी हुआ नहीं दुख-दर्द।
आज रो पड़ी 'चन्दनबाला', रो देता है भारी मर्द॥

जीभ खींच कर मां को मरते, देखा तभी नहीं रोई।
'महावीर' को जाते देखा, इसीलिये व्याकुल होई॥

बिकवाया जब चौराहे पर, आंखें हुई न थीं गीली।
वज्र हृदय वाली यह बाला, देखो आज हुई ढीली॥

'मूला' ने जो कष्ट दिये वे, किये विनोद सहित स्वीकार।
'महावीर' को जाते देखा, इकदम निकल पड़ा चीत्कार॥

नहीं दान का लाभ मिला इस- लिये भाग्य को है धिक्कार।
'चन्दनबाला' जी के मन में, प्रतिपल उठता यही विचार॥

'चन्दनबाला' की आंखों से, निकल चली आंसू धारा।
'चन्दन' पावन बन जाएगा, धरती का कण-कण सारा॥

'महावीर ने मुड़ कर देखा, अब सब बातें मिलती हैं।
समय-पूर्त्ति होते ही सारी, इच्छाएं भी फलती हैं॥

खड़े सामने देख 'वीर' को, मन को हुआ महा आनन्द।
नहीं हुए फिर भी आंखों- में से पावन आंसू बन्द॥

दुख के आंसू सुख के आंसू, बन कर अब हैं निकल रहे।
'चन्दनबाला' की आंखों के, आंसू कितने सफल रहे॥

शिशुओं के, शिशुओं की मां के, आंसू भी होते बलवान।
रुके आंसुओं से ही जाते, प्यारे महावीर भगवान॥

हर्ष वर्णनातीत हो रहा, 'चन्दनबाला' देती दान।
उबले उड़दों द्वारा देखो, हुआ त्रिलोकी का कल्याण॥

अहो दाण ! अहो दाणं !

पांच मास पच्चीस दिनों के, तप का हुआ समापन आज।
हुआ उपस्थित इन्द्र लोक से, चल कर सारा देव-समाज॥

जय हो-जय हो लगे बोलने, दुंदुभियां बजतीं आकाश।
डाल तेल दीपक में तूने, किया सुरक्षित दिव्य प्रकाश॥

महापुरुष के प्राणों की कर- रक्षा बहुत किया उपकार।
वरना सचमुच बहुत असम्भव, हो जाता जग का उद्धार॥

दिव्य शक्तियों से हथकड़ियां, आभूषण बन जाती हैं।
सिंहासन पर 'चन्दनबाला', बैठी शोभा पाती है॥

दिव्य वस्त्र आभूषण पहने, देवी-सी लगती बाला।
'चन्दनबाला' को पहनाई, जाती है 'चन्दन' माला॥

देव-देवियां नतियां करते, स्तुतियां करते संसारी।
कल्पवृक्ष का सिंचन करने- वाली भाग्यवती नारी॥

धन्य बताया मात-पिता को, धन्य बताया अपने को।
अब तो सफल बना डालेगी, बाला अपने सपने को॥

सौनैये बरसाए जाते, घर में साढे बारह क्रोड़ ।
खड़े हो गए देव - देवियां, दोनों हाथ लिये हैं जोड़ ॥
बरसे सुमन-वसन आंगन में, फैली भारी वहां सुगन्ध ।
ऐसे दोनों का होता है, सारी दुनियां से सम्बन्ध ॥
नहीं पारना भी है कमती, तपका है यदि बड़ा महत्त्व ।
क्यों महत्त्व न रहे अर्थ में, 'चन्दन' अगर सूत्र में तत्त्व ॥

लुहार को लेकर

मिला लुहार बड़ी देरी से, 'सेठ धनावह' आता घर ।
सिंहासन पर बैठी बिटिया, 'चन्दनबाला' जी सुन्दर ॥
सोनैयों - सुमनों वसनों से, भरा पड़ा है सारा घर ।
कानों में आते हैं पल - पल, जय हो-जय हो के ही स्वर ॥
क्या है ? क्यों है ? कैसे है यह ? मेरे घर का सारा खेल ।
दानधर्म की महिमा ने यह, मचा रखी है रेलम पेल ॥
महावीर भगवान पधारे, आज अचानक तेरे द्वार ।
परम पारना हुआ उन्हों का, उनकी है सब जय-जयकार ॥
सुनते-सुनते सारी बातें, सेठ आ रहा है नजदीक ।
देखूंगा आंखों से तब ही, 'चन्दन' मानूंगा मैं ठीक ॥

चन्दनबाला पर पुष्प-वृष्टि

'मूला' भी आई

जाना-सुना किसी के द्वारा, मेरे घर पर धन बरसा।
'मूला' सेठानी का सारा, तन-मन आज बहुत हरषा ॥
'चन्दनबाला' का न ध्यान तो, अब भी लेकिन आया है।
केवल सोनैये लेने का, दिल में लालच छाया है ॥
कोई ले जाए न उठाकर, मेरे घर से मेरा माल।
मेरे सेठ बड़े धर्मात्मा, वह तो रखते नहीं ख़याल ॥

दौड़ लगाती आई घर पर, देखा लगा हुआ धन ढेर।
हाय-हाय रे ! करदी मैंने, आने में क्यों इतनी देर ॥
भाग्य प्रबल है मेरा देखो, वरना लोग उठा लेते।
फिर तो लोभी लोग मुझे वे, कहने से भी क्यों देते ॥
'चन्दनबाला' को देखा अब, सिंहासन पर है आसीन।
कितना अद्भुत मनमोहक वह, बना देखने लायक सीन ॥

समझ सकी न 'मूला' कुछ भी, अक़ल हो गई इकदम दंग।
नया रंग है—नया ढंग है, नया-नया हर उसका अंग ॥
लदी हुई है गहनों से वह, गज़-गज़ लम्बे सिर पर बाल।
हाल कमाल हुआ यह कैसे, समझ सकी न 'चन्दनलाल ॥'

लौट सकी न पीछे ही वह, आगे क़दम बढ़ा न सकी।
बात अनोखी और निराली, समझ एक भी आ न सकी॥

'चन्दनबाला' का विनय

'मूला' को जब सम्मुख देखा, उतर पड़ी है सिंहासन से।
होती है पहचान बड़ों की, कर्त्तव्यों से - भाषण से॥

देवदत्त सुन्दर केशों से, पांव पोंछती बोली आप।
मां! जो महिमा देख रही हो, तेरा ही है पुण्य-प्रताप॥

महावीर भगवान पधारे, हुआ पारना अपने घर।
घर को भरा देवताओं ने, सुमन, वसन, धन बरसा कर॥

लज्जित होती सकुचाती-सी, 'मूला' करने लगी विचार।
देखो मेरे अपकारों को, गिनवाती पूरा उपकार॥

'चन्दनबाला' ने 'मूला' को, हाथ पकड़ बिठलाया साथ।
इतने ही में सेठ आ गया, कुछ तो सुन पाया था बात॥

'चन्दनबाला' उतरी उतरी- 'मूला' भी आदर करने।
'मूला' लगी कांपने तन में, मन में लगी बहुत डरने॥

"इतने ही में 'सेठ धनावह', बोला—दुष्टे ! शर्म नहीं ?
इसके साथ बैठने लायक, तेरा कोई कर्म नहीं ॥
मुंह दिखाने को आई है, कहां गई थी इतनी देर ?
कितनी जल्दी दौड़ी आई, देखा-सुना लगा धन ढेर ॥

पापिन् ! हटजा दूर यहां से, मत कर इसक स्पर्श जरा ।
हर्ष मुझे भी होता यदि तू, अपनाती आदर्श जरा ॥

नहीं नीम मीठा हो सकता, सींची जाए घृत की धार ।
तेरे जैसी पापिनियों का, होता किंचित नहीं सुधार ॥

इतना-इतना कहा तुझे पर, तूने नहीं किया विश्वास ।
लगी बुझाने में ही तू तो, इसका जगमग पूर्ण प्रकाश ॥
तेरी आकृति अवलोकन से, तेरे से करने से बात ।
बड़ा पाप लगता है सचमुच, एक नहीं सच मानो सात ॥"

भला-बुरा सब कहा सेठ ने, क्योंकि चढ़ा था भारी क्रोध ।
सुनने वालों को हो जाता, 'चन्दन' इससे मनोविनोद ॥

'चन्दनबाला' बोली

धन्यवाद दो देना हो तो, उलाहना क्यों देते हो ?
किया इन्होंने जो करना था, आप नहीं गुण लेते हो ॥

अगर न ऐसा करती माता, दान नहीं लेते भगवान।
माता मूल रही है कारण, अवगुण का भी लो गुण मान॥

देखो गुणग्राही जो सज्जन, ऐसे ही ले लेते गुण।
उनको किसी वस्तु में भी तो, नजर नहीं आते दुर्गुण॥

सुख में दुख, दुख में सुख लगता, कहते इसको माया जाल।
सर्वावस्था में सुख लगता, मानव होता तभी निहाल॥

जितने द्रव्य जगत में होते, सवका अलग-अलग है गुन।
यह तो केवल मनः-कल्पना, जिसको हम कहते दुर्गुन॥

वुरा उसे वतलाया जाता, मन को जो अप्रिय अमनोज्ञ।
लेकिन वही किसी को होता, योग्य मनोज्ञ तथा उपभोग्य॥

मां का जो अपमान करोगे, वह होगा मेरा अपमान।
'चन्दनवाला' ने बदला है, अपने पूज्य पिता का ध्यान॥

शान्त वनाकर ले दोनों को, वैठी है सिहासन पर।
विद्युत गति से 'कौशांवी' के, घर-घर फैली नई खवर॥

जनता की ज़बान

जिस दिन चौराहे पर विकती- देखा था, उस कन्या से।
'महावीर' का ,,हुआ पारना, धन्या से - कृत पुण्या से॥

नृप 'दधिवाहन' और 'धारिणी'- रानी की वह बेटी है।
'वसुमति' पहले थी अब 'चन्दन- बाला' सद्गुण-पेटी है॥
सोनैयों की वृष्टि हुई घर, सृष्टि बदल डाली सारी।
दृष्टि बदल देती लोगों की, 'चन्दन' शीलवती नारी॥

दर्शन करवा दीजिये

"सुना रथिक की पत्नी ने भी, जिसको मैंने बिकवाया।
आज उसी का सुयश सुरों ने, मुक्त स्वरों से है गाया॥
सभी भाग्यशाली जाते हैं, दर्शन करने घर-घर से।
'चन्दनबाला' की स्तुति करने, अन्तर से-उच्च स्वर से॥

असती-कुलटा होती तो क्या, इतनी महिमा पा जाती?
बुरी वासनाओं की जग को, बुरी गन्ध ही आ जाती॥
मैं उत्कंठित हूँ जाने को, 'सेठ धनावह' के घर पर।
धन्य-बनूंगी अब तो 'चन्दन- बाला जी' के दर्शन कर॥

बड़ी कृपा होगी मेरे पर, कहा रथिक से चलिये आप।
भूल क्षमा कर देना मेरी, मुझे पुण्य में दीखा पाप॥
कहा आपका कभी न माना, मैंने मेरा हठ ठाना।
इसीलिये होता है मुझको, पुनः-पुनः अब पछताना॥

मैंने झूठा ब्रह्म किया था, नौकर सच्चे, सच्चे आप।
डर लगता है सती मुझे तो, कहीं न दे-दे कोई श्राप॥

केवल मेरी दृष्टि बुरी थी, सृष्टि बुरी समझी सारी।
मुझे शुद्ध कर देने की अब, सारी, लो जिम्मेवारी॥

जा सकती हूं अभी अकेली, किन्तु मुझे लगता है डर।
कैसे जाऊं कैसे दर्शन- पाऊं मैं निर्भय होकर॥

आप साथ में जावोगे तो, क्षमा याचना कर लूंगी।
रोकर-पैरों में गिर कर, बाहों में उसको भर लूंगी॥"

'चन्दनबाला' के दर्शन को, पत्नी सहित रथिक आता।
दर्शन करने वालों का तो, 'चन्दन' आज लगा तांता॥

वेश्या भी आती है

वेश्या ने जब सुना जिसे मैं, लेती थी उस वक्त खरीद।
'दधिवाहन' राजा की पुत्री- है वह 'चन्दन' चश्मेदीद॥

दिया उसी ने महावीर को, अपने हाथों से शुभ दान।
सुरवर नरवर मिलकर गाते, गाते सभी बड़े गुणगान॥

वेश्या वृत्ति छुड़ाई, मुझको, सदाचार का पाठ दिया।
विषय-वासनाओं का मेरा, फन्दा जिसने काट दिया॥

चली 'चन्दना' के दर्शन को, ठाठ-वाट पूरा लेकर।
भीड़ दर्शनों को आती है, अपनी डालो जिधर नज़र॥

मौसी मृगावती

इस लड़की की जाति-पांति का, पूर्ण पता सब ने पाया।
बड़ा छुपाया कन्या ने पर, भेद आज बाहर आया॥
'चन्दनवाला' के जीवन का, जान लिया सारा वृत्तान्त।
पहुँच गया कोने-कोने में, कोई बचा नहीं एकान्त॥

'चन्दनवाला' की मौसी जी, 'मृगावती रानी' के पास।
सारी वात पहुँचते ही तो, क्षण के लिये न आया सांस॥
मेरे पति के अपराधों का, आया यह सारा परिणाम।
खोटे ऐसे कामों से ही, होते राजमहल बदनाम॥
'शतानीक' को बुलवाया है, 'मृगावती' ने अपने पास।
समझ न पाया अभी-अभी क्या, काम हो गया ऐसा ख़ास॥
आते ही देखा तो रानी- बैठी क्रोध किये भारी।
मन में नरवर लगा सोचने, हुई आज क्या बीमारी?
सती-तेज प्रज्वलित हो रहा, देख लगा नरवर को डर।
देखो दब्बू नारी का घर, नर भी सकता नहीं सुधर॥

राजा बोला—रुष्ट आज क्यों? कारण स्पष्ट करो इसका।
मुझे ज्ञात जो होगा फ़ौरन, उत्तर दे दूंगा उसका॥

रानी मृगावती उवाच

'चम्पा' पर चढ़ करके भारी, दिखलाया था क्षत्रिय-धर्म?
लेकिन पता लगाया उससे, कितने बुरे हुए हैं कर्म?
'दधिवाहन' को पड़ा भागना, पता न पाया रानी का।
अभी-अभी ही पता मिला- लड़की की पूर्ण कहानी का॥
रथी आपका ले आया था, उसने फिर बेचा बाज़ार।
समाचार संक्षिप्त यही है, आज लगा उसका दरबार॥
आए इन्द्र-देवता मिलकर, अहोदान का करते गान।
चलो उसे ले आएं अब भी, अपने घर पर कर सम्मान॥

सामन्तों को आदेश

'मृगावती रानी' ने ऐसे, अन्तर जिसदम खोला है।
लज्जित-सा 'शतानीक' होता, नम्र स्वरों में बोला है॥
'दधिवाहन' की लड़की को मैं, अपनी लड़की मान रहा।
सच है बिल्कुल मृगावती जो! नहीं मुझे कुछ ज्ञान रहा॥

राजा ने सामन्तों को– आदेश दिया अब जाने का।
बिठा पालकी पर महलों में, कन्या को ले आने का॥
आज्ञा पाकर सेठ सदन पर, गए पालकी ले सामन्त।
देख वहां रचना अद्भुत, हर्षित होते हैं अत्यन्त॥
सामन्तों ने उचित रीति से, किया सुता का अभिवादन।
नम्र निवेदन किया भूप का, भेजा इसीलिये वाहन॥

हमें जाना होगा

राजमहल का आमन्त्रण नर- साधारण के लिए महान।
'चन्दनबाला' ने जो बोला, उसको सुनना देकर ध्यान॥

"मौसी जी से, मौसा जी से, कहना मेरा पुण्य प्रणाम।
राजमहल में रहने से हो– सकता कभी न मेरा काम॥
मैं न महल के योग्य रही हूं, क्योंकि महल में होते पाप।
न्याय-नीति से, दया-सत्य से, नहीं किया जाता इनसाफ़॥

सामन्तों ने विनय किया पर, 'चन्दनबाला' हुई न त्यार।
चले गए चुपचाप सभी वे, चाकर आज्ञा से लाचार॥

जो कुछ कहा कहा भूपति ने, बोली 'मृगावती' अब आप।
ऐसे नहीं कभी आ सकती, मुझे पता था राजन्! साफ़॥
किन्तु आपके बीच बोलना, मैंने उचित न माना जी!
उसे बुलाने की खातिर अब, होगा हमको जाना जी!

राजा बोला—चलो चलें हम, लेकरके अपना परिवार।
'चन्दनबाला' भी समझेगी, मौसी जी के मन का प्यार॥

चली सवारी 'शतानीक' की, 'मृगावती रानी' है साथ।
'मृगावती जी' मौसी होती, घर-घर फैल चुकी यह बात॥
ज्यों-ज्यों बात फैलती जाती, त्यों-त्यों आती जाती भीड़।
बड़ी भीड़ में सहनी होती, सारे लोगों को कुछ पीड़॥

अनामन्त्रित सम्मेलन

इधर रथिक पति-पत्नी आए, वेश्या आई और उधर।
'शतानीक' ले रानी जी को, आता आया इधर नजर॥
'चन्दनबाला' से सारे ही, क्षमा मांगने लगे प्रथम।
सचमुच आप महान सती हैं, हम हैं पापी और अधम॥

'चन्दनवाला' सिंहासन से, उठकर करती उन्हें प्रणाम।
आप सज्जनों की करुणा से, कर पाई मैं अच्छा काम॥
आप सभी का मेरे सिर पर, वहुत वड़ा जी! है उपकार।
नमस्कार कर मुझे, आप क्यों, अधिक चढ़ाते सिर पर भार॥

सभी सज्जनों का सम्मेलन, विना वुलाए हुआ यहां।
'चन्दन' सज्जन के दर्शन भी, विना भाग्य के पड़े कहां॥

राजा बोला—आइये, अव महलों में आप।
विनती मेरी मान लें, माफ़ करें सव पाप॥

दो-चार सवाल

'चन्दनबाला' बोली—पलते, महलों में दुनिया के पाप।
कैसे आ सकती हूँ मैं अव, विल्कुल समझ लीजिये साफ़॥
आना होता तो आ जाती, सामन्तों के साथ तभी।
उन्हें कही थी जो कुछ वो ही, कहती हूँ मैं वात अभी॥
निरपराधियों पर होते हैं, वड़े - वड़े जो अत्याचार।
महलों से ही उठते सारे, करुणा हीन विशेष विचार॥

आज्ञा हो तो आज आप से, किये जायं दो-चार सवाल।
दोष पिता जी का क्या था, जो उनको ऐसे दिया निकाल?

अगर दोष था 'दधिवाहन' का, उनको केवल देते दण्ड।
'चम्पापुर' के प्रजा-जनों ने, नहीं आपसे किया घमण्ड॥

बच्चे, स्त्रियां मरे कितने ही, विधवाएं हो गईं अनेक।
भला आदमी ऐसी बातें, कोई कभी न सकता देख॥

लूट हो रही 'चम्पापुर' में, आप मानते थे आनन्द।
आप चाहते तो क्षण भर में, हो जाता आक्रन्दन बन्द॥

आवश्यक है राजधर्म का, पालन करता है नरवर।
ठीक किया क्या कार्य आपने? मांग रही हूँ मैं उत्तर॥

मेरी मां ने प्राण त्याग कर, अपना धर्म बचाया था।
जीवन की पुस्तक का मुझको, अन्तिम पाठ पढ़ाया था॥

भक्षक रथिक हो गया रक्षक, देख सती का यह बलिदान।
इन सब पापों के मौसा जी! कारण केवल आप महान॥

रखा 'धारिणी रानी' ने यों, प्राण त्याग कर सत्य सतीत्व।
जग में अमर रहा करता है, बड़ा कृतित्व सहित व्यक्तित्व॥

रानी, रानी की बेटी में, जब ऐसा बीतक बीता।
अग्निकुण्ड में कूदी होंगी, कोमल कितनी ही सीता॥

बहू-बेटियों की इज्ज़त पर, कितने ही तो हुए प्रहार।
अबलाओं को होना पड़ता, बुरी तरह से कभी शिकार॥
मौसा जी! इन सब कष्टों का, कारण हो सकता है कर्म।
शायद वह टल जाता, रखते- आप अगर भूपति का धर्म॥"

'चन्दनबाला' के प्रश्नों का, दिया जाय अब क्या उत्तर।
झुका हुआ है भरी सभा में, बड़ी शर्म के मारे सिर॥

मौसी जी रो पड़ीं

'मृगावती' को रोना आया, रोते सुनने वाले लोग।
'चन्दनबाला' के कष्टों का, बड़ा विचित्र बना संयोग॥
'चन्दनबाला' बोली—अब मत- करिये सोच ज़रा मौसी!
दोषी और नहीं है कोई, कर्म आदमी के दोषी॥
मृत्यु अवश्यंभावी होती, पंडितमरण कभी होता।
उसके लिये समझदार नर, कोई कभी नहीं रोता॥
शान्ति समर में मेरी मां ने, नहीं उतारा जो होता।
आज देखती हूँ आंखों से, वही नज़ारा तो होता॥

राजधर्म के नाम पर, चलते अत्याचार।
इसीलिये मैंने यहां, प्रस्तुत किये विचार॥

कष्ट नहीं टलते कहने से, सहने से टलते हैं कष्ट।
जीवन वृत्त सुना कर मेरा, मैंने यही किया है स्पष्ट॥

राज-धर्म का चित्र खींचकर, दिया ज़रा-सा यह दिग्बोध।
लूट मचाकर कभी न करना, इतना हलका मनोविनोद॥

सहिष्णुता रखने से होती, शान्ति स्थापना घर-घर में।
भेद दृष्टि देना न धर्म तो, कर अन्तर नारी-नर में॥

कम होती जो इच्छा-तृष्णा, कभी न भरते अपना कोष।
खून गरीबों का न चूसते, नहीं लूटते जन निर्दोष॥

आय वृद्धि के लिये किया है, अगर किया हित लोगों का।
सोते, जागते, ध्यान लगाते, केवल अपने भोगों का॥

कौन दुःखी है किसको कैसे, काम दिए जा सकते हैं।
इन स्थानों पर राज्यधर्म के, चरण नहीं क्यों रुकते हैं॥

चलता कहां अनैतिक धंधा, इसके कौन दलाल बड़े।
पापों का धन लेने वाले, बने दिवार समान खड़े॥

दास-दासियों का क्रय-विक्रय, होता है चौराहे पर।
ध्यान दिया क्या कभी आपने, बिकी यहीं पर मैं आकर!!

आत्म-गुणों का हनन जहां हो, ऐसा नहीं चाहिये स्थान।
'चन्दनबाला' न चाहिये, मैले महलों का सम्मान॥

मुझे यहां उपलब्धि हुई जो, कभी न होती महलों में।
विषय-वासनाओं से जकड़ी, मैं भी रोती महलों में॥"

सन्न हुई सुन करके जनता, बिल्कुल सत्य कही है बात।
सत्य वादियों को मिलना है, 'चन्दन' सारे युग का साथ॥

'शतानीक' की क्षमा याचना

'मृगावती' के नयनों में से, टपक रहा देखो पानी।
'शतानीक' के मुंह से निकल न- पाई है कुछ भी वाणी॥

स्वस्थ ज़रा-सा हो जाने पर, 'शतानीक' भूपति बोला।
क्षमा दीजिये अपराधों की, बिछा रहा हूँ मैं भोला॥

जैसा खींचा चित्र आपने, वास्तव में मैं वैसा हूं।
पाप लगे जिसका मुंह देखे, पापी उसके जैसा हूँ॥

अपराधी हूं, गुनहगार हूँ, लज्जित हूँ, हूँ शर्मिन्दा।
ऐसे घृणा पूर्ण कार्यों को, नहीं करूंगा आइन्दा॥

पश्चाताप एक प्रायश्चित

दुराग्रहों से—आवेशों से, मानव करता पाप जघन्य।
बिल्कुल नहीं नगण्य ज़रा भी, सारे विषय वासना-जन्य॥

घटनाओं से-उपदेशों से, उसे जभी होता मालूम।
पश्चातापों द्वारा उसका, दिल बन जाता कोमल कूम॥

'परदेशी राजा' था शोषक, हिंसक-अन्यायी-अति क्रूर।
'केशी' के उपदेशों द्वारा, हुआ शीघ्र पापों से दूर॥
'सांप चण्डकौशिक' लोगों को, डंसता देता भारी कष्ट।
'महावीर' से बोध मिला जब, जड़ से किया क्रोध को नष्ट॥
देखा युद्ध 'कलिंग देश' का, बदल गया सम्राट् 'अशोक।'
स्थान-स्थान पर आदेशों से, हिंसा पर लगवादी रोक॥
'दधिवाहन' ने 'शतानीक' को, दिया बहुत सुन्दर उपदेश।
सुनता और समझता कैसे, चढ़ा हुआ था युद्धावेश॥
आर्त्तनाद, चीखें, क्रन्दन सुन, हृदय पसीजा नहीं कभी।
उसी नृपति को उपदेशों से, होता पश्चाताप अभी॥
पापी धर्मात्मा हो जाता, धर्मात्मा बनता पापी।
'सूरदास' 'वाल्मीकि' आदि के, उदाहरण समझो काफ़ी॥

'शतानीक' 'चन्दनबाला' के, चरणों में गिर जाता है।
स्मृतियां पापों की आने से, दिल दुख से भर जाता है॥
छुपकर किए हुए हों चाहे, दिल में तो रहती है याद।
आखिर अपनी आत्मा की तो, सुननी पड़ती है फरियाद॥

आत्मा रो उठती है अपनी, भले-बुरे का उसको भान।
चाहे बेईमान न क्यों हो, आखिर को तो है इनसान॥

'चन्दनबाला' ने सोचा अब, दिया जाय कुछ उद्‌बोधन।
उद्‌बोधन द्वारा ही तो, बन्द किया जाता रोदन॥
"जो कुछ मैं कहती हूँ वो भी, पूज्य पिता जी! सुनिये आप।
आप, आपके किये हुए— पापों का करते पश्चाताप॥
पश्चाताप आप भी तप है, कहते ऐसे सन्त पुकार।
किए हुए पापों का इससे, हलका हो जाता है भार॥
क्षति-पूर्ति करने से भी तो, पाप साफ़ हो जाते कम।
शर्त यही है वही पाप जो, पुनः नहीं करते हैं हम॥

शपथ ग्रहण

"शपथ कीजिये आप अभी से, नहीं करूंगा ऐसे पाप।
छीना जिनका स्वत्व उन्हें ही, लौटा देना फिर से आप॥
इतना कुछ कर देने से भी, पावन बन जाएगा मन।
पावन मन होने से तन-धन, धर्माराधन के साधन॥
प्रजाजनों का संरक्षण हो, अपराधी को दण्ड मिले।
दो बातें होने से राजन्! राज्य व्यवस्था क्यों न चले॥

दुष्ट नहीं दण्डित होंगे जब, शिष्ट नहीं सुख पाएंगे।
कामी, लोभी, अन्यायी नृप, घोर नरक में जाएंगे॥"

'चन्दनबाला' की वाणी सुन, 'शतानीक' का हुआ सुधार।
देखो कष्ट उठाकर करते, सन्त पुरुष ही दीनोद्धार॥

नहीं स्वत्व छीनूंगा अब मैं, नहीं किसी का अहित करूं।
आगे कर का भार बढ़ाकर, और खजाना नहीं भरूं॥

'दधिवाहन' का पता लगाकर, राज्य उन्हें लौटा दूंगा।
अपराधों को हाथ जोड़कर, उनसे माफ़ी चाहूंगा॥

'चम्पा' को जो क्षति पहुंचाई, उसकी पूर्ति करूंगा मैं।
लोग डरेंगे क्यों मेरे से, उनसे आप डरूंगा मैं॥

इतने दिन तक मुझे नहीं था, इन लोगों का कोई डर।
लादा करता था लोगों पर, निश-दिन भारी-भारी कर॥

जनता रोती रो करके रह- जाती मन से मुझको कोस।
राज्य व्यवस्था को दे देती, दे सकती जितना भी दोष॥
नहीं बोल सकती थी मुंह से, सत्ता से सारे डरते।
सारे सत्ताधारी मन का, धारा काम किया करते॥

सुना करूंगा इन लोगों की, सारी बातें देकर ध्यान।
क्योंकि आपने आज कर दिया, सावधान 'चन्दन' दे ज्ञान॥"

एक और शपथ

हुआ बड़ा आश्चर्य प्रजा को, 'शतानीक' का देख सुधार।
'चन्दनबाला' की बुलवाई, पूरे ऊंचे स्वर जयकार॥
'मृगावती' ने दिया सती को, धन्यवाद जी भर-भर कर।
बेटी ! तेरी उपकृति की, स्मृति सदा रहेगी जीवन भर॥

एक प्रतिज्ञा और कीजिये, भूल जाइये पिछली बात।
रखना है औदार्य अधिक ही, दण्ड योग्य लोगों के साथ॥

'शतानीक' ने कहा—ठीक है, किन्तु एक इसमें आगार।
जिसने लूटा शील सती का, उसको दूंगा कारागार॥
'सती धारिणी' के मरने का, और नहीं कोई कारण।
पुत्री ! इसको कैसे समझूं, बता दीजिये साधारण॥
बेचा जिसने चौराहे पर, ऐसे-ऐसे ये अपराध।
सजा इन्हें भुगतावूंगा मैं, कभी नहीं दे सकता बाद॥

मुझे दण्ड दीजिये

सुनकर रथी सोचता मन में, कुशल नहीं है मेरी अब।
मेरी मौत घूमती सिर पर, क्षण भर की है देरी अब॥

मैंने पाप किया जो उसका, मुझे भोगना होगा दण्ड ।
देकर दण्ड दवाए जाते, पृथ्वी तल के पाप प्रचण्ड ॥

'चन्दनवाला' वोली नृप से, किया आपने पश्चाताप ।
वे भी पश्चातापों द्वारा, शुद्धि करेंगे अपने आप ॥

'शतानीक' वोला

मेरे लिये दण्ड जो देंगी, मैं उसको भुगताऊंगा ।
सवके लिये समान व्यवस्था, लागू कर दिखलाऊंगा ॥
छोटा-वड़ा नहीं है कोई, अपरावी को होगा दण्ड ।
'शतानीक' राजा का देखो, शासन जन प्रिय सदा अखण्ड।।

रथिक उवाच

इतने ही में उठा रथिक खुद, साहस कर आगे आया ।
राजन् ! दण्ड दीजिये मुझको, मैं ही इन्हें उठा लाया ॥
रानी जी ने मुझे वहुत ही, समझाया था वारम्वार ।
वलात्कार का आखिर मैंने, अजमा कर देखा हथियार ॥
मुझसे वचने को रानी ने, जीभ खींचकर त्यागे प्राण ।
जो भी आप उचित समझें अव, करिये वह ही दण्ड विवान ॥

सुनकर जनता बोल उठी है, हमने देखा पहला वीर।
अपराधों का दण्ड भोगने, खड़ा हो गया होकर धीर॥

पहले पाप किये जाते हैं, और छुपाये जाते हैं।
लेकिन वे विरले होते जो, सच्ची बात बताते हैं॥

अपराधों का बदला लेने, यही शान्ति की राह अखण्ड।
दोषी का दिल बदल डालिये, यही शान्ति की राह अखण्ड॥

अपराधों की वृद्धि बताती, न्याय व्यवस्था में है भूल।
भूल तभी मिट सकती है जब, कर्त्ता करता उसे क़बूल॥

अपराधों के प्रति नफ़रत हो, अपराधी का यही सुधार।
ख़त्म हो रही मृत्यु सज़ाएं, लगते बिल्कुल सही विचार॥

रथी पिता से तथा आप से, कहती हूँ मैं बात नई।
दण्ड भोगने की अब कोई, आवश्यकता नहीं रही॥

मैंने माना पिता रथिक को, मां ने माना था भाई।
किया सभी मंजूर सभा में, किंचित भीति नहीं आई॥

मेरे पूरे श्रद्धास्पद हैं, इनको गले लगायें आप।
पहले के अपराध कीजिये, सारे के सारे ही माफ़॥

अनन्य क्षमादान

अपराधी को दण्ड मांगते, मैंने देखा पहली बार।
सभा जुड़ी 'चन्दनबाला' की, अथवा कहिये प्रभु-दरबार॥

'चन्दनबाला' की वाणी ने, जादू जैसा किया असर।
उठकर मिला रथी से भूपति, बाहुपाश से लिया जकड़॥

क्षमादान देता हूं तुम को, अब से हो मेरे भाई।
'चन्दनबाला जी' की महिमा, सत्य समझने में आई॥

क्षमादान देने वाले को, लेने वाले को है धन्य!
दान बहुत से होते लेकिन, क्षमादान है एक अनन्य॥

अब तो पधारिये

'शतानीक' ने कहा विनय से, महलों में अब जायं पधार।
हुआ आपके द्वारा देखो, महलों का भी यहीं सुधार॥

महल न कहते कभी नृपति को, बुरा काम कर भला न कर।
महलों में बसने वाला ही, खुद ही भला-बुरा है नर॥

मेरी बुरी भावनाओं से मैं, करता था काम बुरा।
अपने आप नहीं चलता है, कितना ही हो तेज छुरा॥

आप पधारेंगी महलों में, हो जाऊंगा अधिक पवित्र।
वातावरण सुगन्धित बनता, अच्छा रख लेने से इत्र॥
वर्तमान को पहचाना है, किया आपने परिवर्तन।
मैल उतर जाता है तन से, करने से ज्यों उद्धवर्त्तन॥
किन्तु यहां से मेरा जाना, होगा देखो धर्म विरुद्ध।
बीस लाख सोनैयों का ऋण, जब तक होता नहीं विशुद्ध॥

बोला रथी—सोच मत करिये, ज्यों के त्यों वे पड़े अभी।
ऋण न रहेगा सिर पर कोई, सोनैये दो इन्हें सभी॥
कहकर जाने लगा रथिक घर, सोनैये ले आने को।
रोक लिया है उसे सेठ ने, अपना कुछ मनवाने को॥

बोला सेठ सजल कर आंखे, बिकी हुई हैं आप नहीं।
आप त्रिलोकी की सम्पत हैं, कोई जिसका माप नहीं॥
बीस लाख सोनैये देकर, मैंने एक दिया उपहार।
स्पष्ट कर दिया गया उसी क्षण, क्यों करते हो पुनरुच्चार॥
मुझे और मेरे घर को जो, मिला धर्म का भारी लाभ।
चन्दनबाला जी! उसका भी, सारा जोड़ो क्यों न हिसाब॥
पांच मास पच्चीस दिनों का, 'महावीर' का तप पारण।
मेरे घर पर हुआ देखिये, एक आप ही के कारण॥

'आप जाइये' मेरे मुंह से, कभी नहीं मैं कह सकता।
भूखी नहीं पधारें इतना, कहे विना न रह सकता॥

प्रीति-भोज का आयोजन

बोला सेठ नृपति से—मैं हूं, सेवक, स्वामी मेरे आप।
मेरे घर पर आप पधारे, सारा इसका पुण्य-प्रताप॥

इन्हें महल में ले जाने से, मैं न कभी होता इन्कार।
भोजन करवा करके भेजूं, इतना आग्रह हो स्वीकार॥

सती पारणा करे यहां पर, मौसा जी के हाथों से।
जनता वड़ी प्रसन्न हो रही, प्रेम भरी इन वातों से॥

'चन्दनवाला' वोली-—भूखी, कभी नहीं मैं जावूंगी।
अगर नहीं भूपति खाएंगे, मैं न अकेली खावूंगी॥

आप व्यवस्था करिये, सवका- भोजन होगा आज यहीं।
'चन्दनवाला' के आग्रह को, टाल सके महाराज नहीं॥

'चन्दनवाला' राजा-रानी, रथी-रथिक की घरवारी।
किया सभी ने भोजन, जाते- आयोजन की वलिहारी॥

काम सेठ के घर का होता, करती जनता सारा काम।
साहूकारों का होता है, लेकिन इसीलिये ही नाम॥

पैसा व्यर्थ चला जाता है, जो न व्यवस्था हो सुन्दर।
यश ऐसे ही मिल जाता तो, ले लेते नटखट वन्दर॥

बड़े समारोहों में मिलना, जनता का जब पूरा साथ।
सभी सफलता चरण चूमती, पावन प्रेम बड़ी है बात॥

भोजन की विधि पूर्ण हुई अब, जाने की तैयारी है।
'चन्दन' बोलो 'चन्दनबाला', देवी है या नारी है॥

विदाई के क्षण

देव-देवियों राजाओं से, सम्मानित 'चन्दनबाला'।
छोटे और बड़ों का देखो, करती हित 'चन्दनबाला'॥

"जाती हूं मैं अब इस घर से, घर का मुझ पर है उपकार।
धर्म वृद्धि जो हुई यहां से, ऋणी रहेगा यह संसार॥

मांजी! पूज्य पिताजी! मुझको, कभी न विस्मृत कर देना।
धर्म ध्यान की शुभ वेला में, स्मृति से दिल को भर लेना॥"

किया प्रणाम सती ने झुककर, दोनों देते आशीर्वाद।
हम तो क्या भूलेंगे तुमको, तू भी करते रहना याद॥

पास-पड़ोसी लोगों से भी, बड़े प्रेम के साथ मिली।
नौकर-चाकर आश्रित से भी, करती पूरी बात मिली॥

प्रिय से प्रिय चीजें दी जातीं, विदा न दी जाती केवल।
लेने वाला लेता है जब, आ जाता आंखों में जल॥

विरह विछुड़ने का सह लेना, वज्र हृदय का होता काम।
कोमल दिल रोने लग जाता, सुनते ही विछुड़ने का नाम॥

विछुड़न में जो भरी वेदना, वतलाने में कवि असमर्थ।
यही एक है वस्तु निराली, शब्द नहीं हैं केवल अर्थ॥

वतलाने की चेष्टाओं से, वतलाया जाएगा अंश।
दिल के टुकड़े हो जाते हैं, 'चन्दन' लिखने का सारांश॥

रोया 'सेठ धनावह', रोई- 'मूला' मानो गया निधान।
'चन्दनवाला' के रहने को, योग्य नहीं था क्या यह स्थान?

महलों की ओर चरण

वैठ पालकी में जाती है, महलों को 'चन्दनवाला'।
राजा-रानी रथ में वैठे, गाते - गाते गुण - माला॥

भारी भीड़ लगी लोगों की, जय हो-जय हो वोल रहे।
प्यारी जय-जय ध्वनि से धरती- और धराधर डोल रहे॥

"मुझे पता जो होता ऐसा, इसको मैं ले लेता मोल।
सोनैयों की कमी नहीं थी, मेरे मित्र! वोल रे वोल॥

नहीं अभागे नर को मिलती, कोई अच्छी वस्तु कभी।
खैर हुआ सो हुआ उसी के- दर्शन करलें चलो अभी॥
पावन करलें मानव जीवन, पाकरके चरणों का स्पर्श।
स्पर्श नहीं कर पाएंगे तो, दूर खड़े कर लेंगे दर्श॥"

ऐसे कहते लोग अनेकों, आगे बढ़ते जाते हैं।
धक्कमधक्का मुक्कममुक्का, खाते और लगाते हैं॥
देखा 'चन्दनबाला' ने जब. नहीं नियन्त्रण में है भीड़।
मेरे दर्शन पाने को यह, सही जा रही भारी पीड़॥
उतर पालकी से नीचे तब, जनता को देती दर्शन।
'चन्दनबाला' का पावन, चुम्बकीय है आकर्षण॥

पैदल चलते देखा इसको, राजा-रानी साथ हुए।
ऊंचे उठते जय शब्दों के- साथ सभी के हाथ हुए॥
मन में जितना हर्ष भरा था, प्रगट हो रहा वाणी से।
बिल्कुल चुप न रह जाता है, इस पंचेन्द्रिय प्राणी से॥
बांध टूट जाने के डर से, नालों से जाता है जल।
हर्ष हृदय में नहीं समाता, वाणी-द्वारा रहा निकल॥
चलते-चलते किसी चौक में, देख एक ऊंचा-सा स्थान।
'चन्दनबाला' खड़ी हो गई, 'चन्दन' देने को व्याख्यान॥

सभा रूप में परिवर्तित हो- गया जलूस वड़ा भारी।
अब मुख से दर्शन करते हैं, देखो सारे नर-नारी ॥
शान्त-शान्त सुनने को उत्सुक, 'चन्दनवाला' की वाणी।
ऐसी वात सुनायेंगी यह, जो न सुनी हमने जानी ॥

"सुनो भाइयो! वहनो! कहती- हूँ मैं अपनी वीती वात।
उसका अंग वहुत सा शायद, आप सभी को होगा ज्ञात ॥
वीस लाख सोनैयों में मैं, विकती थी चौराहे पर।
किन्तु आपने नहीं खरीदा, वेश्या की तव पड़ी नजर ॥
मेरे द्वारा घृणित कार्य से, उसने द्रव्य कमाना था।
इसीलिये उसके घर जाना, मैंने उचित न माना था ॥
दिया आप लोगों ने भी तो, वेश्या के स्वर का हो साथ।
क्योंकि आप भी यही चाहते, वेश्या हो तो अच्छी वात ॥

शील सहायक दिव्य शक्ति ने, टाल दिया था वह अवसर।
आखिर सेठ 'धनावह' के घर, आश्रय पाया अति सुखकर ॥
धर्म वृद्धि की मैंने, उसका- सम्मुख यह आया परिणाम।
जिसे आज प्रत्यक्ष आप सब, मुख से कहते अच्छा काम ॥

मेरे दर्शन करने को उत्सुक, हैं सुनने को वाणी।
मान लीजिये वे शिक्षाएं, मैंने जो मां की मानी॥
मेरे में जो गुण हैं उनसे, जोड़ लिया जाए सम्बन्ध।
"चन्दन' उनसे ही पावोगे, इह भव-परभव में आनन्द॥

यथा उक्तं

शान्ति-समर में कभी भूल कर, धैर्य नहीं खोना होगा।
वज्र प्रहार भले सिर पर हो, किन्तु नहीं रोना होगा॥
अरि से बदला लेने का मन, बीज नहीं बोना होगा।
घर में कान तूल देकर फिर, तुझे नहीं सोना होगा॥
देश-दाग़ को रुधिर वारि से, हर्षित हो धोना होगा।
देश-कार्य की भारी गठड़ी, सिर पर रख ढोना होगा॥

आंखें लाल भवें टेढी कर, क्रोध नहीं करना होगा।
बलि वेदी पर तुझे हर्ष से, चढ़कर के मरना होगा॥
नश्वर है नर देह मौत से, कभी नहीं डरना होगा।
सत्य-मार्ग को छोड़ स्वार्थ पथ- पर पैर नहीं धरना होगा॥
होगी निश्चय जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा।
मातृ-भूमि के लिए हर्ष से, जीना या मरना होगा॥"

भाषण हुआ समाप्त, प्रेम से, सुना उपस्थित जनता ने।
सचमुच समझा-परखा अपना, पूर्ण हिताहित जनता ने॥

नहीं कहानी-किस्सा है यह, घटना निज जीवन की।
लाभान्वित हो सारी जनता, दृष्टि यही उद्बोधन की॥

अन्य कई गण मान्य व्यक्तियों- ने भी अपने रखे विचार।
सबको सुनना अरे! चाहिये, बन करके अत्यन्त उदार॥
उपादेय जो अंश मिले वह, अपना लेना खुश होकर।
बाक़ी वहीं छोड़ना फ़ौरन, क्या करना बोझा ढोकर॥
गुण लेने के लिये चाहिये, अपनी बुद्धि-विवेक बड़ा।
लेकिन केवल ले सकता है, पार्थिव एक अपक्व घड़ा॥

सभा विसर्जित हुई शांति से, जनता ने जयकार किया।
महल प्रवेश हुआ जब 'चन्दन', सबने मिल सत्कार किया॥

धर्म प्रभावना

'चन्दनबाला' महल में, पहुंच गई सुख पूर्व।
जनता कहती आज तो, देखा-सुना अपूर्व॥
फैली महिमा शील की, लोगों में भरपूर।
अवगुण अपने आपके, करना हम को दूर॥

दान धर्म की भावना, प्रवल हुई अत्यन्त।
सोनैयों की वृष्टि का, देखा दृश्य ज्वलन्त॥

क्रोध नहीं करना कभी, कुछ भी आए कष्ट।
'चन्दनवाला' ने हमें, वतलाया है स्पष्ट॥

हिल-मिल कर रहना सदा, करना कर में काम।
'चन्दनवाला' ने कहा, है आराम हराम॥
काम नहीं छोटा कभी, सभी बड़े हैं काम।
कला पूर्ण जो काम हो, जग में होता नाम॥
नहीं नाम की चाहना, किन्तु काम से काम।
देखो मिलता काम से, आत्मा को आराम॥
काम विना का काल तो, होता व्यर्थ व्यतीत।
कामा आपने काम से, सवको लेता जीत॥
इससे वढ़कर और क्या, होगा दृश्य सजीव।
भर जाता है जोश से, एक वार तो क्लीव॥
सभी नहीं, कुछ ही सही, हुए प्रभावित लोग।
'चन्दनवाला' को मिला, कांचन-मणि संयोग॥

जहां गई जैसे रहीं, उसका किया सुधार।
निश-दिन अपनी साधना, करती धर्म-प्रचार॥

आत्म साधना के लिये, जो भी करो प्रयास।
देखो वह सबके लिये, देता नया प्रकाश॥

महलों में अब 'चन्दना' करे धर्म का ध्यान।
सुनों ध्यान से सज्जनों! 'चन्दन' का व्याख्यान॥

दिल बदलता है

अच्छे भावों से मैत्री का, जन्म हुआ करता है दिल में।
तैल तभी निकलेगा देखो, तैल अगर होगा तिल में॥

जन्म शत्रुता का होता है, बुरे विचार उठें मन में।
वांसों का संघर्षण देखो, आग लगा देता वन में॥

नहीं राग हो नहीं द्वेष हो, तो रहता है औदासीन्य।
उस मानव की आत्मा में से, स्वतः निकल जाता मालिन्य॥

'सर्वे सुखिनः सन्तु'-भावना, रखने वाले हैं ज्ञानी।
उन्हें यही चिन्ता है रहती, प्राणी क्यों हैं अज्ञानी॥

शत्रु-मित्र के भाव बना कर, भेद किया जाता उत्पन्न।
मेरा-तेरा अपने पीछे, रखते राग-द्वेष प्रच्छन्न॥

प्राणी-मात्र के साथ मैत्रिका, सूत्र जिन्होंने दिया प्रथम।
उनके श्रद्धास्पद चरणों में, 'चन्दन' शीश झुकाते हम॥

दधिवाहन' की खोज

'दधिवाहन' को शत्रु समझता, 'शतानीक नृप' इतने दिन।
सूर्य अस्त हो जाने पर क्या, देखा विकसित रहा नलिन?
जगा विवेक हृदय में जब से, तब से उसे मानता मित्र।
इसीलिये अब बदल रहा है, देखो चित्र पवित्र चरित्र॥
अपने आदमियों को भेजा, 'दधिवाहन' की करने खोज।
मिले जहां से ले आना है, उनके दिल को दिला विरोज॥

वन का कोना-कोना छाना, छानी गहन गुफाएं भी।
पूर्ण ध्यान से छानी सारी, छाई हुई लताएं भी॥
नदियां, नाले, गिरिवर छाने, छाने छिपने वाले स्थान।
छानबीन करने वालों को, इसका पूरा रहता ध्यान॥
जीवित नहीं रहे हैं अब तक, होते तो वह मिल जाते।
प्रश्न उठाते अपने मन से, उत्तर मन से दिलवाते॥
चलो, नृपति से करें निवेदन, पता नहीं 'दधिवाहन' का।
हमने कोना-कोना छाना, धरती का, गिरि का, वन का॥

असफल नर के आस-पास में, सदा अधैर्य रहा करता।
वह तो–'यह तो हुआ नहीं जी!' आखिर यही कहा करता॥

'जत्थे में से कहा किसी ने, क्यों हिम्मत देते हो तोड़ ।
अगर न आंक सही है भाई ! देखो पुनः मिला कर जोड़ ॥

छोड़ दिया जो काम अधूरा, तुम्हें कौन सौंपेगा काम ?
काम पूर्ण करके ही हमको, करना है पीछे आराम ॥

'कर्त्तव्यं वा मर्त्तव्यं वा'— विस्मर्त्तव्यं नहीं कभी ।
'दधिवाहन नृप' जीवित हैं, मिल जाएंगे अभी-अभी ॥"

ऐसे साहस भर कर उर में, टोली क़दम बढ़ाती है ।
साथी के साहस ने भर दी, देखो सबकी छाती है ॥

वन में चलते 'दधिवाहन' को, लिया इन्होंने अब पहचान ।
इसीलिये 'अनुमान' ज्ञान को, दिया गया ज्ञानों में स्थान ॥

किया इन्होंने झुक करके अब, 'दधिवाहन' को पुण्य प्रणाम ।
'दधिवाहन' ने सोचा कैसे, लेते हैं ये मेरा नाम !!

कौन और किस लिये

मैंने नहीं बताया अब तक, दिया नहीं परिचय अपना ।
कैसे पहचाना लोगों ने, इनको क्या आया सपना ?

कौन ? कहां से आए हो तुम ? क्या है 'दधिवाहन' से काम ?
अथ से इति तक कथा सुना कर, लिया इन्होंने अब विश्राम ॥

बोले—'नृपति शतानीक' को, अभी नहीं क्या तोष हुआ ?
मुझे बुलाने भेजा तुमको, मेरा क्या कुछ दोष हुआ ?

वन में जीवन यापन करना, मैं सुख पूर्वक रहता हूं।
'शतानीक' के लिये किसी से, कभी नहीं कुछ कहता हूं॥

मुझे युद्ध से पूर्ण घृणा है, मुझ से क्यों भय खाते हो।
मुझे मारने के खातिर ही, अब क्यों मुझे बुलाते हो॥

सबसे प्यारी वस्तु अगर है, तो है सबको प्यारे प्राण।
प्राण लूटने वाले प्राणी, कहीं नहीं पा सकते त्राण॥

प्राण डालने की ताकत जो, नहीं तुम्हारे हाथों में।
प्राण लूटने की हिम्मत क्यों, हो जाती है बातों में॥

याद रखो 'दधिवाहन नृप' तो, 'शतानीक' से लड़ा नहीं।
लड़ने वाला लूट मचाने- वाला होता बड़ा नहीं॥

बड़ा वही होता है जिसका, चित्त दया से ओत:-प्रोत।
शतमुख बहता ही रहता है, निर्मल करुणा वाला स्रोत॥

चोट जरा सी लग जाने पर, रोते हैं—चिल्लाते हैं।
चोट मारते समय आप क्यों, राक्षक सम बन जाते हैं?

औरों के रोने पर हंसना, बहुत बड़ा बतलाया पाप।
पूंछ सको तो पूंछो आंसू, गुणियों ने समझाया साफ़॥

लगे घाव पर नमक छिड़कना, 'शतानीक' को आता है।
'चन्दन' समझ गया हूँ मैं, वह, जिसके लिये बुलाता है॥"

आना, माना

अनुनय करते अनुचर बोले, बिल्कुल बदल गई है बात।
सारा राज्य आपका वापस- देंगे, कहते हैं साक्षात्॥
'कोशांबी' के राजभवन में, 'चन्दनबाला' रहती है।
सुबह, दुपहरे, शाम हमेशा, धर्म-कथाएं कहती है॥

'दधिवाहन' ने पूछा—है वह, 'चन्दनबाला' बाला कौन ?
सारा वृत्त बताकर अनुचर, हो जाते हैं सहसा मौन॥

दुःख, हर्ष, आश्चर्य साथ में, करते हैं 'दधिवाहन' आप।
क्या मेरी पुत्री का इतना, फैल चुका है पुण्य-प्रताप ?
कैसे मुंह दिखलाऊंगा मैं, उन्हें छोड़ कर भागा वन।
इसीलिये संकोच हो रहा, जाने का कमती है मन॥
समझाने से 'दधिवाहन' ने, आना माना है आखिर।
मिली सूचना कोशाम्बी में, हर्ष छा गया है घर-घर॥

स्वागत समारोह

'दधिवाहन' का स्वागत करने, 'कोशाम्बी को सजवाया।
'शतानीक नृप' ठाठ-वाठ से, लेने को सम्मुख आया॥

उतर गये हैं दोनों भूपति, अपने - अपने वाहन छोड़।
एक दूसरे का आपस में, अभिवादन करते कर-जोड़॥

'शतानीक' गिर पड़ा चरण में, बोला—मुझको क्षमा करो।
आप बड़े हो बड़े रहोगे, निश-दिन सुख पूर्वक विचरो॥

मेरे द्वारा हुए बहुत से, छोटे-मोटे जो अपराध।
भूल जाइये उन्हें आज से, फिर न कभी भी करिये याद

अपराधों को याद करोगे, कर न सकोगे क्षमा प्रदान।
मेरे जैसे नराधमों को, नहीं नरक भी देगा स्थान॥"

'दधिवाहन' ने 'शतानीक' को, उठा लगाया छाती से।
बहुत दिनों से बिछुड़ा साथी, मिलता है ज्यों साथी से॥

बोला नृपति—हुआ जो होना, रोना अब क्यों रोते हो।
आप आदि से साढ़ू मेरे, साथ सखा भी होते हो॥

नहीं खिन्नता-नहीं भिन्नता, किसी तरह की मानें आप।
मेरा मन तो पहले से भी, अभी अधिक है राजन्! साफ़॥

'दधिवाहन' से गले मिलते हुए राजा 'शतानीक'

मिलन महारथियों का देखा, जनता करती है जयकार।
जनता द्वारा ही होता है, सत्य प्रेम स्वागत सत्कार ॥
पूज्य पिता 'चन्दनवाला' के, 'चम्पा' के हैं नरवर आप।
'दधिवाहन' है नाम आपका, परिचय दिया जा रहा साफ़॥

राजमहल तक भीड़

राजमार्ग की ओर उमड़ती, प्रजा खड़ी है दोनों तर्फ़।
भले इशारे से समझावो, सुना न जाता कोई हर्फ़ ॥
दर्शन करने की उत्सुकता, करती नर को उत्कन्धर।
अभी न आए-अभी न आए, पूछ रहे अन्दर-अन्दर ॥
लड़की ऐसी है तो उसके- कैसे होंगे पूज्य पिता।
राजा होते हुए भला वह, सादा जीवन रहे विता !!

दधिवाहन के स्वागत में ही, जनता सज-धज रही खड़ी।
इतने में आती असवारी, नर-नारी की नज़र चढ़ी ॥
धन्य! धन्य! 'नृप दधिवाहन हैं', बहुत भले सीधे-सादे।
तूने देख लिये अब भाई, हम को भी तो दिखलादे ॥
षट फुट वाले खड़े व्यक्ति से, बोला पीछे वाला नर।
हम को दर्शन करने हैं जी! ज़रा आप हो जायं इधर ॥

बड़ी देर से खड़े हुए हम, तुम क्यों आगे आते हो।
धक्कम-धक्का करके देखो, गड़बड़ बड़ी मचाते हो॥

सभ्य राज्य के सभ्य नागरिक, नहीं व्यवस्था करते भंग।
रंग बिगड़ता-ढंग बिगड़ता, देखो अगर अशिक्षित संघ॥
छोटे-बड़े सभी लोगों को, लाभ दर्शनों का लेना।
दर्शन करने वालों को ही, उचित नहीं धक्का देना॥
इतनी देर लगाई है तो, थोड़ी और लगावो देर।
पके हुए जो होंगे भाई! कभी न होंगे खट्टे बेर॥

जय हो 'दधिवाहन' राजा की, 'शतानीक' नृप की जय हो।
जय हो-जय हो कहने वाले, सुनने वाले निर्भय हो॥
राजमहल के दरवाज़ों पर, पहुंच गई अब असवारी।
जितनी भीड़ प्रवेश समय थी, उतनी साथ रही सारी॥

महल का रंग

राजभवन सुर-भवन-सी, दिखा रहा था शान।
आज-काल में ही किया, मानो नव निर्माण॥
शोभा सारे देश की, यहीं विराजी आप।
महलों से ही निकलता, नृप जीवन का माप॥

संग्रामों के चित्र ही, लगे हुए थे फक्त।
'शतानीक' की कर रहे, अभिरुचियां अभिव्यक्त॥

अर्द्धनग्नता के कहीं, टंगे हुए थे चित्र।
'चन्दन' ऐसे महल भी, होते कहीं पवित्र ?

मन में सकुचाते हुए, नृप ने किया प्रवेश।
'चन्दनबाला' को दिया, सखियों ने संदेश॥

पिता-पुत्री का मिलाप

'दधिवाहन' नृप आगए, करिये दर्शन आप।
हम देखेंगी हर्ष से पुत्री-पिता मिलाप॥

'चन्दनबाला' ने सुना, प्यारा सब सम्वाद।
दर्शन करने के लिये, उपजा अति आल्हाद॥

सफल रही असफल रही, मेरी मति अनुसार।
पूज्य पिता जी के सुनूं, इस पर ज़रा विचार॥

होती कन्या और तो; रोती करती रोष।
उलाहना देती हुई, दिखलाती गुण-दोष॥

करती भारी भर्त्सना, आप बैठती रूठ।
'चन्दनबाला' ने किया, देखो यह सब भूठ॥

लेकिन अच्छी 'चन्दना', रखती पक्व विचार।
पकने में ही देखलो, फल होते रसदार॥

'दधिवाहन' के सामने, आकर किया प्रणाम।
पुत्री! तेरा बहुत ही, श्लाघनीय है काम॥
कायरता से मैं नहीं, छोड़ गया था राज।
युद्ध टालने के लिए, मेरा था अन्दाज॥
तेरी मां ने बहुत ही, किया बड़ा बलिदान।
तेरा मेरा इसीलिये, हुआ आज कल्याण॥
तेरा शील स्वभाव है, दुनिया में बेजोड़।
पावन तेरे चरण की, कौन करेगा होड़॥
मैं अपराधी जनक हूँ, नहीं नमन के योग्य।
मेरे कृत्यों ने मुझे, साबित किया अयोग्य॥"

ऐसे कहकर रो पड़े, करने लगे विलाप।
होता कोमल चित्त में, बहुत बड़ा परिताप॥
पुत्री बोली—हे पिता, होवो नहीं अधीर।
सुना नहीं देखा नहीं, रोते हों जो वीर॥
दृष्टिकोण था आपका, सचमुच बहुत विशुद्ध।
किसी तरह से टालना, सिर पर आया युद्ध॥

इसी दृष्टि से आपने, किया राज्य का त्याग ।
क्षत्रिय कहलाता न जो, जाता रण से भाग ॥

महारथी फिर आप-से, कैसे जाते भाग ।
नहीं देखना चाहते, आप रक्त का दाग़ ॥

हार-जीत का प्रश्न ही, रह जाता है गौण ।
अद्भुत अपना अलग ही, रखते थे दृष्टिकोण ॥

जो कुछ होता है वही, होता अच्छा काम ।
सबके सम्मुख आ गया, आखिर शुभ परिणाम ॥

भूलें आप अतीत को, आवश्यक है आज ।
सुनी पूर्ण ओजस्विनी, बेटी की आवाज़ ॥

रथी से भाईचारा

इतने ही में आ गया, रथी नृपति के पास ।
हाथ जोड़कर कह रहा, हाजर हूँ मैं दास ॥

अपराधी मैं आपका, मुझे दीजिये दण्ड ।
रखा 'धारिणी' ने सुनो, अपना धर्म अखण्ड ॥

'चन्दनबाला' ने दिया, परिचय आद्योपान्त ।
किया गया उसको अभय, कहा सकल वृत्तान्त ॥

हम-तुम भाई हैं अभो, कह कर मिलते आप।
पुत्री जो जीवित रही, तेरा पुण्य-प्रताप ॥
किंचित भयमत कीजिये, करें धर्म का ध्यान ॥
'चन्दन' सारे जगत का, जिससे हो कल्याण।

स्वस्थ बनिये

'दधिवाहन' को स्वस्थ बनाया, बड़ी भली 'चन्दनबाला'।
इसीलिये सोलह सतियों में, बड़ी चली 'चन्दनबाला' ॥
बन का, तन का, मन का बोझा, दूर हुआ 'दधिवाहन' का।
सारा फ़र्क़ हुआ करता है, सदा बाहरी साधन का ॥
अच्छा खाना-अच्छा पीना, अच्छा रहन-सहन हो फिर।
बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य भी देखो, वापिस जल्दी आता घिर ॥
चिन्ताओं से तन का मन का, बिगड़ा करता सारा नूर।
प्यारे धर्मी बनने वालो! चिन्ताओं से रहिये दूर ॥
चिन्ताओं से काम न होते, होते होने वाले काम।
चिन्ताओं को छोड़, कीजिये- अब तो आप ज़रा आराम ॥

काम नहीं रहता है बाक़ी, हाय - हाय से है हानी।
'चन्दन' वही सुनाता है जो, सुनी और मैंने जानी ॥

'चन्दनवाला' 'मृगावती' भी, वैठी 'दधिवाहन' के पास ।
'शतानीक नृप' करता अव तो, अपने ही कुछ भाव प्रकाश ॥

"पुर्नमिलन जो हुआ हमारा, इसमें सारा पुण्य प्रताप ।
'चन्दनवाला' ही का केवल, मैं तो मान रहा हूं साफ़ ॥
विजय आपके हक में होती, तो भी वैर वना रहता ।
मेरे में जो अवगुण थे वे, कौन भला मुझ से कहता ॥
'सती चन्दना' की वाणी ने, खोल दिए हैं मेरे नेत्र ।
इसीलिये यह वना हुआ है, महल समूचा धार्मिक क्षेत्र ॥
हित न प्रजा का कर सकता है, क्या वह हो सकता नरवर ।
वास्तव में यदि राजा हो तो, राजा आते आप नजर ॥
मैंने निश्चय किया आप को, सौंपूं दोनों राज्य विशेष ।
कैसे राज्य किया जाता है, सीखूं रहता दास हमेश ॥
'चम्पा' का तो राज्य आपका, ही है इसमें कहना क्या ।
'कौशांवी' का राज्य साथ में, दिया नहीं तो वहना क्या ?

जिन महलों में लूट-खोस की, चर्चाओं का चलता दौर ।
आज राज्य लौटाये जाते, पाठक! पढ़िये करके ग़ौर ॥

सद्भावों की शुद्ध स्थापना, करती है 'चन्दनवाला'।
नहीं मारती किसी जीव को, तरती है 'चन्दनवाला'॥

जिसने आपा मारा होगा, वही करेगा जगत् सुधार!
पान नहीं खाना है अच्छा, चलते-चलते लिया उधार॥

वड़ा त्याग करना पड़ता है, विषयों और कषायों का।
आलम्बन होता है देखो, जिसमें शुद्ध उपायों का॥

वड़ी सरल है वड़ी कठिन है, जैसा जिसका होता मन।
इसीलिये तो दोनों बातें, कह देता है 'मुनि चन्दन'॥

नारी कहती—सरल साधना, नर कहता लगता है डर।
परमात्मा के पास पहुँचना, देखो वहुत दूर है घर॥"

मैं वृद्ध हूँ आप रखिये

सुनकर 'शतानीक' की बातें, वहुत अधिक आया आनन्द।
'दधिवाहन' के हृदयोदधि में, हर्ष-उर्म्मियां उठीं अमन्द॥

"नहीं बुराई रही आप में, इससे वढ़कर हर्ष नहीं!
अपना राज्य साथ में देना, अन्य और आदर्श नहीं॥

राज्य मुझे लौटा देने की, वात आप क्यों करते हो?
'कौशांवी' के राज्य-भार को, मेरे सिर पर धरते हो॥

मैं हूं वृद्ध उठा न सकूंगा, राज्य भार होता भारी।
दोनों ही राज्यों की राजन्! आप रखें जिम्मेवारी ॥
सहज-सहज में उतर गया है, मेरे सिर से सारा भार।
उसे दुवारा अव लेने को, कहिये क्यों होऊं तैयार ॥

झंझट में मत मुझे डालिये, आप राज्य करते रहिये।
मुझे राज्य की चाह नहीं है, अतः नहीं मुझसे कहिये ॥

परमात्मा की भजन-भक्ति में, अपना समय लगाऊंगा।
सोई अन्तःकरण शक्तियां, 'चन्दन' उन्हें जगाऊंगा ॥"

राज्य की मनुहार

'शतानीक' 'दधिवाहन नृप' को, कहते दोनों देना राज।
'दधिवाहन' कहते हैं मुझको, नहीं एक भी लेना राज ॥

दोनों राज्य तुम्हीं सम्भालो, मुझको करना धर्म का ध्यान।
'चन्दनवाला' की महिमा का, मन में जरा करो अनुमान ॥

राज्य हड़पने गया एक दिन, आज राज्य देने तैयार।
इससे बढ़कर क्या होता है, भाई! वोलो हृदय सुधार?

सभी छोड़कर मर जाते हैं, नहीं साथ में जाता राज।
नहीं दूसरे को पहनाया- जाता इन हाथों से ताज ॥

जीते जी, फिर इच्छा-पूर्वक, राज्य त्याग कर देने को।
दोनों हैं तैयार, नहीं- तैयार एक भी लेने को॥

तुम लो-तुम लो कहते-कहते- मानो करते हैं मनुहार।
राज्य-त्याग के द्वारा मानों, किया जा रहा है सत्कार॥

तू पी—तू पी करते जैसे, हरिनों ने त्यागे थे प्राण।
शुद्ध प्रेम की शुद्ध त्याग की, कुछ तो करो जरा पहचान

'मैं लूं—मैं लूं' करती दुनिया, लड़ती और झगड़ती है।
दोनों कट-कट कर मर जाते, पड़ी वस्तुएं सड़ती हैं॥

मेरे हाथ नहीं आई तो, इसे नहीं पाने दूंगा।
लुटवा दूंगा-ढुलवा दूंगा, बदला अभी निकालूंगा॥

पढ़ो प्रेम से पृष्ठ प्रेम के, जिससे प्रेम किया जाए।
प्रेम दिया जाये 'चन्दन' फिर, उसका प्रेम लिया जाए॥

क्या देने को पड़ा पास में, क्या लेने ललचाते हो?
देना-लेना प्रेम चाहिए, उसे भूल ही जाते हो!!
पड़े वस्तुओं की चिन्ता में, सत्य प्रेम ठुकराते हो!
जो है चली प्रेम की धारा, उसको आप सुखाते हो!!
जिसके जो कुछ हाथ लग गया, उसको आप दबाते हो!
बीज वैर के वो हाथों से, निश-दिन उसे बढ़ाते हो!!

मुझे दुःख है इस हालत पर, ज्ञान करो कुछ ध्यान करो।
सच्चे त्याग-मार्ग-का आगे, व्रढ़ करके सम्मान करो॥
'शतानीक' 'दधिवाहन' नृप का, उदाहरण क्या कहता है?
'चन्दन' धर्म यही बतलाता, नहीं शेष कुछ रहता है॥

बीच में बोलना पड़ा

'चन्दनबाला' 'मृगावती जी', देख रही हैं बैठी पास।
दोनों दोनों को देती हैं, अब तो बहुत-बहुत शाबाश॥
मानो गेंद खेलने वाले, गेंद फेंकते हाथों से।
ये आपस में राज्य-गेंद को, फेंक रहे हैं बातों से॥

'चन्दनबाला' बोली—अच्छा, रखदूं मैं भी एक विचार।
नहीं एक से उठ सकता है, दो से उठने वाला भार॥
शुद्ध भावनाएं दोनों की, एक सरीखी दीख रहीं।
इसीलिये 'चन्दनबाला' की, बातें बिल्कुल ठीक रहीं॥
अपना-अपना राज्य लीजिये, न्याय सहित पालन करिये।
राज्य-धर्म के साथ धर्म को, निश-दिन लेकर अनुसरिये॥
'चन्दनबाला' की वाणी को, नहीं टालने की क्षमता।
शतानीक ने समझा 'चन्दन', संस्थापित होती समता॥

राज्याभिषेक की तैयारी

सवकी सम्मति ले करके अव, नियत किया है शुभदिन एक।
'दधिवाहन'को किया जायगा, 'चम्पा नगरी' का अभिषेक॥

'चम्पापुर' वासी लोगों को, भिजवाया है शुभ सन्देश।
ऐसे शुभ अवसर पर होते, नये-नये उल्लासोन्मेष॥

'कौशाम्वी' को शिंगारा है, जैसे कोई दुलहिन हो।
नई चेतना - नई कल्पना- द्वारा उठती झनझन हो॥

खुशियां अधिक हो रही त्यों-त्यों, ज्यों-ज्यों आता समय समीप।
जगमग-जगमग करती नगरी, जगमगता ज्यों रत्नद्वीप॥

'चम्पा' से भी वहुत लोग हैं, आए होने को शामिल।
अपने प्यारे राजा से मिल, सवका खुश होता है दिल॥

कुशल परस्पर पूछा सवका, किया गया आदर-सत्कार।
आदर देना-आदर लेना, जग का वहुत भला व्यवहार॥

आए हुए किसी सज्जन को, अगर न आदर दिया गया।
प्रेम प्रकट आया था देखो, किन्तु न उसको लिया गया॥

आनेवाला किसी वस्तु का, भूखा है तो आदर का।
आप अगर ऊंचे घर के हैं, वह भी है ऊंचे घर का॥

भाई, न्याती, सम्बन्धी जन, आते जब बुलवाते हो।
बिना बुलाये आप किसी के, घर पर कभी न जाते हो॥
जाने पर आने पर देखो, अगर न आदर हो सत्कार।
आखिर निर्णय यही निकलता, जाना-आना है बेकार॥

इस पर भी सार्धमिक भाई, आजाये जब अपने घर।
उसका बहुत कीजिए आदर, होता यह स्वर्णिम अवसर॥

मैं रोटी की बात न करता, करता हूं आत्मा की बात।
आने वालों की आत्मा से, ही तो करना है साक्षात॥
आत्मा अगर प्रेम में डूबी- होगी सुख में पूर्ण निमग्न।
नहीं भरा जाता है देखो, जो कोई होता घट भग्न॥

'चम्पापुर' की प्रजा आज खुश, 'दधिवाहन नृप' से मिलकर।
सूर्योदय पर सूर्यविकासी, हर्ष प्रगट करता खिलकर॥

'शतानीक' ने 'दधिवाहन' को, राजमुकुट पहनाया है।
समारोह की पूर्ण सफलता, लिया राज्य लौटाया है॥
मैं क्या हूं, इनका ही तो था, इनका इनको देता हूं।
मैंने पाप किया जो उसका, प्रायश्चित यह लेता हूं॥

'दधिवाहन' को राजमुकुट पहनाते हुए 'राजा शतानीक'

परिवर्तन जो देख रहे हो, सती-कृपा का फल सारा।
'चन्दन' आशा क्या थी वरना, 'शतानीक' नृप के द्वारा॥

भाषण का सारांश

"अच्छे कामों का अनुमोदन, अच्छे लोग किया करते।
अच्छाई ले सकते जितनी, उतनी आप लिया करते॥

अच्छे कामों पर जाने का, मतलब होता है अच्छा।
अच्छा जब समझेगा कोई, तब सब होता है अच्छा॥

अच्छाई के पास बैठना, इच्छा अच्छा होने की।
अच्छाई को जगह दीजिए, अपने दिल के कोने की॥

'चन्दनवाला' की अच्छाई, करती अच्छे-अच्छे काम।
जग में अमर रहा करता है, केवल अच्छाई का नाम॥"

'शतानीक' के भाषण का था, इतना-सा ही तो सारांश।
गहराई को मापा जाता, डुबो-डुबो कर लम्बे बांस॥

समारोह का हुआ समापन, मंगल-गाने गा करके।
दुःखों की इति यहां समझिये, देखो पृष्ठ उठा करके॥

जन-जन का आग्रह

'कौशांबी' के राजमहल में. 'दधिवाहन नृप' रहते हैं।
'चम्पा' जाने की इच्छा है, फिर भी कभी न कहते हैं॥
'शतानीक' का प्रेम देख कर, कहना नहीं रहा आसान।
सोच रहे हैं स्वतः कभी तो, इनको आ जायेगा ध्यान॥
किसी तरह की कमी यहां पर, कभी नहीं आ सकती है।
पुत्री पूज्य पिता जी का तो, ध्यान बराबर रखती है॥
राज्य व्यवस्थित है 'चम्पा' का, 'दधिवाहन' है योग्य नरेश।
पहुंचाया जाता है देखो, जो भी इनका हो आदेश॥
आवश्यक है 'चम्पापुर' में, रहना 'नृप दधिवाहन' का।
ऐसा आग्रह-अनुनय 'चन्दन' होता ही है जन-जन का॥

तीनों की एक सलाह

'दधिवाहन' को बैठे-बैठे, आए ऐसे सत्य विचार।
बेटी मेरी अभी कंवारी, यह तो ठीक नहीं व्यवहार॥
इतने ही में 'शतानीक' ने, पूछा—उदासीन क्यों आप?
'दधिवाहन' ने अपने दिल की, बातें कह दीं सारी साफ़॥

ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाया, इसको इसकी मां ने घोल।
बहुत बार पहले तो हमने, जांचा - परखा देखा तोल ॥
तब छोटी थी, आज सयानी, अच्छा हो यदि जाए मान।
इसी बात का आया फिर से, अभी पूर्णतः मुझको ध्यान ॥"

'शतानीक' ने किया समर्थन, 'मृगावती' को लिया बुला।
अच्छे कामों में क्या अच्छा- रहता देना समय खुला ?
'मृगावती' को सौंपा करना- 'चन्दनबाला जी' से बात।
बड़ी चतुर होती है नारी, जब भी कुछ करना हो ज्ञात ॥

स्थान, समय निश्चित कर पहुंचे, 'चन्दनबाला जी' के पास।
तीनों को आते जब देखा, प्रगट किया भारी उल्लास ॥

"अहोभाग्य ! है एक साथ में, तीनों का आगमन हुआ !
दर्शन की अभिलाषाओं का, आकस्मिक ही शमन हुआ ॥
कष्ट किया क्यों ! मेरे लायक, क्या सेवा फ़रमाते हैं ?
बड़े आदमी छोटों से भी, बड़े काम करवाते हैं ॥"
बैठे सभी उचित स्थानों पर, 'चन्दनबाला' बैठी पास।
'मृगावती' अब लगी डालने, उस पर देखो पूर्ण प्रकाश ॥
"हम तीनों की एक कामना, क्या तुम पूरी कर दोगी ?
आशा लेकर हम आए हैं, 'चन्दन' झोली भर दोगी ?"

"मुझे आप जो आज्ञा देंगी, धर्मयुक्त ही वह होगी ?
क्यों न करूंगी मौसी जी ! जो, आज्ञा आप मुझे दोगी ॥"

"अविवाहित जो रहती कन्या, मात-पिता पर आता भार ।
है लौकिक व्यवहार और यह, करता आया है संसार ॥
तेरा पुण्य विवाह देखने- की इच्छा है तीनों की ।
शुभ में स्वीकृति हो जाती है, बेटी ! सदा प्रवीनों की ॥
सन्तानों की स्वीकृति लेकर, पाणिग्रहण रचाये जायं ।
सुखी बनाने की विधियों में, यह भी माना एक उपाय ॥

'मृगावती' चुप होते ही तो, 'शतानीक नृप' बोले—ठीक ।
इसी बात की आश लगी है, कब वह आए शुभ तारीख ॥

'शतानीक' के बाद नरेश्वर, 'दधिवाहन' भी बोल पड़े ।
नहीं विचार अधूरे रहते, जो हों विधियुत अगर घड़े ॥
मां तेरी मौजूद नहीं है, मां जैसी होती मौसी ।
फिर भी व्याह नहीं होगा तो, कहलायेंगे हम दोषी ॥

मौसी ने जो कहा उचित हो- कहा, पूर्ण मैं सहमत हूँ।
'चन्दन' जो न भरोसा हो तो, लिख करके भी मैं खत दूं ॥

ब्रह्मचारिणी रहूँगी

तीनों जब चुप हो गए, कह कर अपनी बात।
'चन्दनबाला' ने सुना, बड़े हर्ष के साथ ॥

योग्य कथन है आपका, उचित अधिक कर्त्तव्य।
जो कि आखिरी वक्त तक, होता है स्मर्त्तव्य ॥

जिन्हें गृहस्थी चाहिये, उनके लिए विवाह।
देखो बतलाई गई, सीधी - सादी राह ॥

ब्रह्मचर्य अति श्रेष्ठ है, जो सकता है पाल।
सचमुच उसके वास्ते, व्याह बड़ा जंजाल ॥

कमज़ोरी का आसरा, समझा जाता व्याह।
लेकिन वीर न मांगते, इससे कभी पनाह ॥

पहला पाठ पढ़ा यही, पाला जाए शील।
मेरी मां ने दी नहीं, कोई इसमें ढील ॥

सारे शुभ मेरे लिये, डलवाऊं क्या तेल।
एक पुरुष के नाम का, नहीं बैठता मेल ॥

उवटन हो जिस नाम का, वंवती उसके साथ।
हाथ दिया जो हाथ में, यही व्याह की वात॥

दुनिया के जितने पुरुष, मेरे लिए समान।
जिसकी पत्नी मैं वनूं, मुझे नहीं है ज्ञान॥

पतितावस्था पुरुष की, मुझे हटाती दूर।
ब्रह्मचर्य व्रत इसलिये, लेना वहुत ज़रूर॥

उच्छृंखलता जगत की, मुझे हटाती दूर।
ब्रह्मचर्य व्रत इसलिये, लेना वहुत ज़रूर॥

कितनी पड़ी कुरीतियां, मुझे हटानी दूर।
ब्रह्मचर्य व्रत इसलिये, लेना वहुत ज़रूर॥

वंधना कभी विवाह से, मुझे नहीं स्वीकार।
ब्रह्मचर्य व्रत पालना, करना यही प्रचार॥

मैं पालूंगी जव नहीं, दूंगी क्या उपदेश।
लोच करावो क्या कहूँ, सिर पर रख कर केश?

कठिन-कठिन सुन कर नहीं, डरना है तिलमात।
डट कर करना चाहिये, ड़र-भय से साक्षात॥

ब्रह्मचर्य की ओट में, अगर चलाए खोट।
पापी वह नर वांधता, वड़ी पाप की पोट॥

पुत्री हूँ मैं आपकी, नहीं कहीं कमजोर।
ज़ोर कभी देता नहीं, जो होता है चोर॥

वातावरण विकार का, आने दिया न पास।
ब्रह्मचर्य का ही मिला, मुझको पूर्ण प्रकाश॥

दर्शन पाकर 'वीर' के, हुई और मज़बूत।
देखो पड़कर आग में, सोना होता पूत॥

डरने वाला नर नहीं, करता व्रत स्वीकार।
सिंह बिना होता नहीं, वन में कभी विहार॥

सुनूं नहीं देखूं नहीं, करूं नहीं मैं बात।
मन में सोचूं ही नहीं, काम कौन सी ज़ात॥

ब्रह्मचर्य है आत्मा, ब्रह्मचर्य हैं प्राण।
ब्रह्मचर्य के वास्ते, दे दूंगी बलिदान॥

ब्रह्मचर्य का ज्ञान है, ब्रह्मचर्य का ध्यान।
ब्रम्हचर्य ही है सदा, सच्ची मेरी शान॥

मनोभूमि में जब नहीं, कहीं काम के बीज।
फिर तो पणिग्रहण की, व्यर्थ बड़ी तजवीज़॥

मेरा मुझको है सदा, अटल पूर्ण विश्वास।
'चन्दन' कोई क्यों करे, अपने आप विनाश॥

मृगावती' का साहस

'शतानीक' ने 'दधिवाहन' ने, 'मृगावती' ने सुनकर बात ।
आशीर्वाद दिया है देखो, सिर पर रख करके शुभ हाथ ॥
क्षमा कीजिए हमको, हमने- किया व्याह का जो अनुरोध ।
लेकिन मिला सहज में हमको, तुमसे ब्रह्मचर्य का बोध ॥

'मृगावती' ने कहा—धर्म के- प्रति मैं थी ही श्रद्धावान ।
आज और भी अधिक बनी हूं, पाकर तेरे द्वारा ज्ञान ॥
तूने अनुभव किये बिना ही, त्यागा विषयों-भोगों को ।
अच्छा मानव नहीं जन्मने, देता है जो रोगों को ॥
मैंने त्यागे नहीं अभी तक, अनुभव करने के पश्चात ।
नाड़ी कैसे देखी जाए, रोगी नहीं बढ़ाता हाथ ॥
फ़र्क यही है तुझको तेरी- मां ने ऐसे ही ढाला ।
मुझे आज तक मिला नहीं- कोई भी समझाने वाला ॥

आज विचार हुआ है मन में, ब्रह्मचर्य मैं पालूंगी ।
तेरे पद-चिन्हों पर चलकर, अपना जीवन ढालूंगी ॥
नहीं भानजी, गुरुणी मेरी- तू ही मेरा है आदर्श ।
ऐसा कहकर हाथ बढ़ाया, उसका करने को पद-स्पर्श ॥

'चन्दनवाला' बोली—मौसी ! वहुत वड़ा व्रत धारा है।
व्रत धारा क्या? दिया आपने, मुझको वड़ा सहारा है ॥
नहीं अकेली रही, आप भी- मेरी साथिन वनी भली।
उठकर दोनों ही आपस में, एक दूसरे-गले मिली ॥

दो और बड़े व्रत

'शतानीक' भी करता निश्चय, ब्रह्मचर्यव्रत लेने का।
नव पथ प्रस्तुत किया आज है, सत् शिक्षाएं देने का ॥
धन्यवाद है ! धन्यवाद है ! वोली यों 'चन्दनवाला'।
मौसा जी ने मौसी जी का, प्रेम निभाया है आला ॥

'दधिवाहन' भी खड़ा हुआ अब, लेने को व्रत आजीवन।
नहीं प्रतिज्ञा थी तो भी मैं, ऐसे रखता था साधन ॥
किन्तु आज इस धर्म-युद्ध में, मैं भी तेरा देता साथ।
वैसे भी तो वृद्ध हो गया, डरने वाली क्या है वात ॥
किया अपन तीनों ने जो कुछ, वहुत प्रशंसा पात्र नहीं।
किया 'चन्दना' ने जो उसका, देखो किञ्चिन्मात्र नहीं ॥
वचपन से ही अपने मन पर, जो कावू पा लेता है।
वह ही काम-जगत का माना- जाता वीर विजेता है ॥

'चन्दनवाला' को गले से लगाते हुए मौसी 'मृगावती'

सुनकर और देखकर करना, करना निश-दिन अच्छे काम
कहां सीख कर आया ? ऐसा, कभी नहीं ले कोई नाम ॥

'चन्दनवाला' के गुण गाते, तीनों अपने स्थान गए ।
ब्रह्मचर्य की बड़ी शक्ति है, आज देख लो मान गए ॥
गए व्याह मंजूर कराने, ब्रह्मचर्य व्रत ले आए ।
धर्म-यज्ञ में अपनी-अपनी, 'चन्दन' आहुति दे आए ॥

चम्पापुर जाने का निर्णय

'चम्पापुर' के प्रजा-लोग आ- आकर अनुनय करते हैं ।
नम्र निवेदन पर क्यों प्रभुवर ! ध्यान नहीं कुछ धरते हैं ?
पता न चलता अगर आपका, आते हम कब कहने को ।
अब लेचलने की इच्छा है, 'चम्पापुर' में रहने को ॥
वहुत दिनों से विछुड़ी जनता, दर्शन को लालायित है ।
अन्तराय है कौन उदय में, जिससे रहती वंचित है ?
वहुत वार पहले ही प्रभु से, कितना किया गया अनुरोध ।
समझ नहीं सकते हम पर, क्या इसमें इतना अवरोध ॥
प्रजा आपकी, आपप्रजा के, कभी नहीं हो सकते भिन्न ।
जीवात्मा से ज्ञान-शक्ति ज्यों, देखो रहती सदा अभिन्न ॥

क्यों होता संकोच आपको, स्पष्टीकरण करो सारा।
सुनकर 'शतानीक' ने सोचा, सचमुच राजा है प्यारा॥

बोला शतानीक–"वास्तव में, प्रजा दुखी है आप बिना।
जैसे दुखी हुआ करती है, प्रिय सन्तानें बाप बिना॥
मुझे प्रेम है बहुत आप से, प्रेम प्रजा का कब कम है।
लेकिन अधिक बताने को ही, प्रत्यय होता तर-तम है॥
नहीं अकेलों को भेजूंगा, मैं खुद ही आऊंगा साथ।
मुझे सीखने मिला करेगी, राजन्! नित्य नई कुछ बात॥
क्षमा मांग कर अपराधों की, हलकी कर डालूंगा पोट।
छिलके दूर हटाने से ही, हलके हो जाते अखरोट॥"

दधिवाहन ने कहा–"आपको, उचित जंचे वैसा करिये।
इसमें मेरी स्वीकृति होगी, वर्तमान को अनुसरिये॥"

प्रजाजनों को स्वीकृति देदी, दोनों ही के आने की।
'शतानीक' ने तैयारी— करवाई 'चम्पा' जाने की॥

"दोनों गए नृपति अब उठकर, 'चन्दनबाला' जी के पास।
चलो आप भी साथ हमारे, 'चम्पापुर' है बहुत उदास॥

बहुत दिनों से उजड़ा सूना, राजमहल देखेगा रंग।
अपने रंग-ढंग से अब तो, 'चम्पा' में होगा सत्संग।।"

'चन्दनवाला' वोली—मेरा, जाने का है नहीं विचार।
भगवद्-दर्शन यहीं हुआ है, हुआ यहीं से मुझको प्यार।।
जन्म-भूमि से प्यार बहुत है, इससे कभी नहीं इन्कार।
किंतु यहां पर सत्य-शील का, चमत्कार का साक्षात्कार।।
'महावीर प्रभु' को जब कब भी, हो जाएगा 'केवलज्ञान।'
दीक्षा लेकर प्रभु चरणों में, फिर 'चम्पा' जाने का ध्यान।।

अच्छा ! जैसी इच्छा हो वह, लिये आपके है अनुकूल।
कभी-कभी ज्यादह आग्रह से, 'चन्दन' हो जाती है भूल।।

'चम्पा' की खुशियां

'शतानीक नृप' 'दधिवाहन' को, लेकर 'चम्पा' को जाते।
'चम्पापुर के सभी प्रतिष्ठित- सज्जन जन लेने आते।।
स्वागत की तैयारी में था, 'चम्पा' का अद्भुत शृंगार।
नगरी का पति हुआ लापता, आज आ रहा करने प्यार।।

किसी विरहिणी नारी का ज्यों, मानो हुआ विरह का अंत ।
'चम्पा' को होती स्वाभाविक, देखो उत्सुकता अत्यन्त ॥
लोगों के मुंह पर है लाली, आते हैं अपने राजा !
चारों ओर बजाया जाता, अब तो मंगलमय बाजा !!

सधवाएं मंगल-वेशों में, खड़ी हुईं ले मुक्ता-थाल ।
मंगल-गीतों की ध्वनियों ने, एक किये सुरपथ-पाताल ॥

नट मंडलियां लगी नाचने, चौक-चौक में ले मस्ती ।
मोल नहीं है उस मस्ती का, कभी नहीं फिर भी सस्ती ॥

हाथी, घोड़े, रथ, पैदल ही, सजकर सम्मुख आये हैं ।
सारे कहते अपने मन में, हमने राजा पाये हैं ॥
दर्शनीय-था श्लाघनीय था, स्वागत चम्पापुर वाला ।
नृप को पहनाते जाते जन, रत्न-पुष्प की नव माला ॥
राज-पथों पर नहीं निकलने- पाता कोई रास्तागीर ।
कहते सारे ऐसी हमने, पहले कभी न देखी भीड़ ॥

एक नहीं, दो राजाओं के, दर्शन सब करते हैं साथ ।
स्वागत का उत्तर देते हैं, जोड़ रहे जनता को हाथ ॥

आपस में होती हैं बातें, शत्रु मित्र भी बना ग़ज़ब !
लिया राज्य लौटाने आया, देखो लगता बड़ा अजब ॥

कहीं दग़ा तो दिखा न देगा, अपना राजा है भोला ।
'शतानीक' ने पहन लिया हो, कहीं मित्रता का चोला ॥

ख़ैर, हमें अब इन बातों पर, देना नहीं जरा भी ध्यान ।
ऐसे मंगल उत्सव में क्यों, बुरा सोचता है इन्सान ॥

पहले से भी अधिक सजाया- गया राज-प्रासाद बड़ा ।
सूख गया था इन्तज़ार में, इतने दिन से खड़ा-खड़ा ॥

कभी न न्हाया कभी न धोया, सजा नहीं था सुन्दर साज ।
कैसे सजता ? नहीं यहां थे, उसके अपने प्रिय सरताज ॥

आज झरोखों की आंखों से, दर्शन करके हुआ पवित्र ।
शायद लिए गए होंगे ही, भारी उत्सुकता से चित्र ॥

हर्ष-ध्वनि के साथ नृपति का, हुआ प्रवेशोत्सव भारी ।
सभी जगह छाई है जनता, युवा बुद्ध नर औ नारी ॥

'दधिवाहन' को सिंहासन पर, 'शतानीक' ने बिठलाया ।
प्रजा-जनों ने दर्शन पाकर, सुख पाया - मंगल गाय ॥
'शतानीक' ने अपराधों के- लिये क्षमा मांगी सब से ।
'चन्दन' ने समझा है-मानव, धर्मी, नृपति बना अब से ॥

चम्पा की प्रजा से क्षमा मांगते हुए राजा 'शतानीक'

खोई चीजें पा जाने का, कैसा होता है आनन्द।
नया कमाना और वात है, इसका अलग रखो सम्बन्ध॥

खोई चीजें पा जाने की, आशाएं हो जाती क्षीण।
मुर्दा जीवित हो जाने की, देखो होती वात नवीन॥
भाग गया जो राजा वन में, कभी नहीं घर आ सकता।
खोया राज्य हाथ से फिर से, कभी नहीं वह पा सकता॥
धर्म-भीरु है और वृद्ध है, और अकेला आप रहा।
नहीं कल्पना करिये कैसे, होगा कहीं 'प्रताप' रहा॥
उसी नृपति को उसी वेश में, उसी स्थान पर पाया जव।
प्यारी जनता के हृदयों में, अचरज वहुत समाया अव॥
कोई किस्मत तेज वताता, कोई तेज वताता धर्म।
कोई श्रेष्ठ शील वतलाता, जिससे रह जाती है शर्म॥

इसमें क्या था? इसकी लड़की- ने ही सारा काम किया।
गिरता था आकाश धरा पर, लेकिन उसने थाम लिया॥
मित्र शत्रु से वना दिया है, मित्र! विचित्र वड़ा है काम।
मित्र नहीं वह ओ मित्र! पूर्णतः, किया पवित्र प्रदेश तमाम॥

महावीर प्रभुवर के तप का, दिया पारना हाथों से।
ऐसे मन आनन्दित करते, तरह-तरह की वातों से॥

लड़की ने क्या, उसकी मां ने, किया कमाल दिया वलिदान !
वलिदानों से ही होता है, 'चन्दन' निश्चय ही कल्याण ॥

प्रेरणाप्रद घटनाएं

असर हुआ करता है जग में, घटनाओं का बहुत बड़ा ।
नहीं प्रमाण ढूंढने पड़ते, कहा न जाता कहीं पढ़ा ॥
लिखा हुआ है धर्म-ग्रन्थ में, सन्तों से है सुना हुआ ।
अपनी ही आंखों के सम्मुख, देखो जो है वना हुआ ॥
'चन्दनवाला' के जीवन से, मिली प्रेरणा जन-जन को ।
धन्य ! धन्य ! कहते हैं सारे, इसीलिये 'दधिवाहन' को ॥
अच्छी सन्तानें होने से, मात-पिता हो जाते धन्य !
अच्छी सन्तानें होती हैं, तव ही जो हों अच्छे पुण्य ॥
अच्छे पुण्य तभी होते हैं, धर्म किया हो-ध्यान किया ।
सत्संगति में वैठ शान्ति से, 'चन्दन' ऊंचा ज्ञान लिया ॥

अपने आप समझिये

धन की धुन में जीने वाले, धर्म-कर्म क्या जानेंगे ।
जानेंगे वे खाना-पीना, इसमें सब कुछ मानेंगे ॥

खेलो-कूदो खाओ-पीओ, और करो ऐशो आराम।
लेकिन मन में नहीं फूलिये, रख कर अपना 'नास्तिक' नाम॥
सावधान बन जाओ पहले, जब परभव में जावोगे।
पूंजी जमा नहीं होगी तो, बोलो फिर क्या खावोगे?
सुख दोगे तो सुख पावोगे, दुख दोगे तो दुख तैयार।
जैसा करना वैसा भरना, ऐसा अपना करो विचार॥
क़हने की क्या आवश्यकता, अपना-अपना समझो काम।
नेक काम जो कर न सको तो, जग में मत होइये बदनाम॥
भले इसी में सदा आपका, और जगत का साथ भला।
भले-बुरे का फल भी जग में, देखा हमने हाथ मिला॥
कौन आदमी होगा ऐसा, जो इससे करदे इन्कार।
इससे जो इन्कार करेगा, है वह केवल नर-आकार॥
मनन नहीं करने वाले का, मानवता से क्या सम्बन्ध।
'चन्दन' इसे कहा जायेगा, सही अर्थ में है मत्यन्ध॥

'शतानीक' की शिक्षा

'दधिवाहन' के साथ महल में, 'शतानीक' भी रहता आप।
दर्पण आप साफ़ जो होगा, तभी दिखाता मुंह है साफ़॥
राजनीति पर धर्मनीति की, छाप लगाना बड़ा कठिन।
'शतानीक' ने 'दधिवाहन' से, शिक्षण प्राप्त किया प्रतिदिन॥

'शतानीक' भी बड़ा निपुण था, इसमें नहीं कभी दो राय।
फिर भी हर्ज नहीं है कोई, गुण जो प्राप्त कहीं हो जाय॥
जीवन अनुभव और तरीके, अपने-अपने होते भिन्न।
लेकिन सीखा जाता है तब, बन जावो जो अंग अभिन्न॥

गुरु बनकर लेने जावोगे, आवोगे फिर खाली हाथ।
बतलावोगे वहां कहां है, कोई लेने लायक बात॥
शिष्य बनो जिससे पाना हो, तो पावोगे पूर्ण रहस्य।
रहता है प्रत्येक व्यक्ति में, कोई नूतन अंश अवश्य॥
लेने वाला कलाकार हो, तो वह ले लेता है गुण।
लेकिन वह क्या लेगा जिसको, लगा द्वेष-ईर्ष्या का घुन॥
सत्यं शिवं शुभं है विश्वं, इसमें संशय जरा नहीं।
अशिव असत्य अशुभ से लेकिन, जो अपना मन भरा नहीं॥

शतानीक गुण ग्राही बनकर, गुण लेता रस ज्यों शाखी।
चाहे सीखा बहुत-बहुत है, अभी सीखना फिर बाकी॥
किन्तु यहां रहने से होता, 'कौशाम्बी' का भी नुक़सान।
नृप को अपने सिवा और का- भी रखना पड़ता है ध्यान॥
इसीलिये अब 'शतानीक' नृप, 'दधिवाहन' का ले आदेश।
'चन्दन' कौशाम्बी आने का, भेज दिया पहले सन्देश॥

'चन्दनबाला'-चरित का, चरण चतुर्थ समाप्त ।
'चन्दन मुनि' ने कर दिया, वर्णन भी पर्याप्त ॥

दुःख-कथा लिखते समय, स्याही जाती सूख ।
नहीं बोलते वक्त भी, निगला जाता थूक ॥

नर में-नारी में नहीं, कन्या में ये कष्ट !
सत्त्रमुत्त-कर्म विचित्रता, हो जाती है स्पष्ट ॥

दुःख-कहानी का यहां, हो जाता है अन्त ।
देखो 'पंचम चरण' में, संयम का सत्पंथ ॥

'चन्दनबाला' ने किया, घर पर भी जो काम ।
उसी काम ने कर दिया, देखो विश्रुत नाम ॥

दीक्षा लेगी 'चन्दना', प्राप्त करेगी मुक्ति ।
इन बातों को अब मुझे, करनी होगी उक्ति ॥

'महावीर जिनराज को, होगा 'केवलज्ञान' ।
प्यारे 'पंचम चरण' में, करना है व्याख्यान ॥
मंगलमय'चन्दन' कथा, मंगल मय है काव्य ।
मंगल करने के लिये, सदा रहेगा श्राव्य ॥

५ पञ्चम चरण

'वीर' जिनेश्वर ! दीजिए, बोधिलाभ वरदान।
जिससे जग में कर सकूं, निज-पर का कल्याण॥
पांचों पद 'नवकार' के, मेरे बनो निमित्त।
पंचम गति के वास्ते, उत्साहित हो चित्त॥

पंचम ज्ञान मिला नहीं, तब तक है संसार।
उसका पंचम चरण में, कर देना विस्तार॥
'चन्दनबाला' चरित का, पंचम चरण प्रधान।
सबका करता जायगा, सदाकाल कल्याण॥

प्रेरक पंचम चरण में, चरण ग्रहण की बात।
करदो प्यारी लेखिनी ! लिखने की शुरुआत॥

रुचता सबको आचरण, अभिरुचि के अनुसार।
'चन्दन' धर्मी पुरुष को, संयम ही स्वीकार॥

भिन्न रुचयो लोका:

'चन्दनबाला' कौन रुचे थे, दुनिया के कोई व्यवहार।
इसीलिये तो ब्रह्मचर्य से, बचपन से ही रखती प्यार॥

कन्या-जगत किया करता है, वर की बातें कानों में।
वर का वर्णन सुन लेती हैं, जब भी वे व्याख्यानों में॥

दुलहा दुलहन को देखेगी, देखेगी कोई बारात।
मेरी भी जब शादी होगी, ऐसी-ऐसी होगी बात॥

समवय वाली सखियां मिलतीं, रख देती हैं पोथी खोल।
भावी चित्र खींचने में वे, समय बिता देतीं अनमोल॥

'चन्दनबाला' ने दीक्षा का, सपन संजोया बचपन में।
इसीलिये तो दृढ़ आस्था से, लगी हुई व्रत-पालन में॥

प्राणिमात्र का हित करने को, संयम ग्रहण किया जाता।
घर से नाता तोड़, जगत से- नाता जोड़ लिया जाता॥

सब मेरे हैं, सबका मैं हूं, हो जाता है हृदय विशाल।
भेद-भाव की नहीं पंक्तियां, पढ़ लो कोई पृष्ठ निकाल॥

संयम जीवन जीने वालों- का जो भी होता व्यवहार।
सारी मधुर-मधुरतम होती, जो भी उठती है झंकार॥
सोते-जगते चलते-फिरते, खाते-पीते रखते ध्यान।
सभी क्रियाएं सात्विक हों तो, पल में कर देतीं कल्याण॥
नहीं हमारा हलन-चलन भी, कष्ट किसी को पहुंचाये।
बुरी भावनाएं संयम में, 'चन्दन' कभी न आ पाएं॥

प्रभु का प्रथम समवसरण

छद्मावस्था में प्रभुवर जी, घोर अभिग्रह तप करते।
देश अनार्यों में भी जाकर, विचर रहे समता वरते॥
पांच मास पच्चीस दिनों का, किया पारना-अभी-अभी।
'चन्दनबाला' के हाथों से, क्या वह भूला जाय कभी॥
नगरी[1] बाहर नदी[2] किनारे, श्याम सेठ के खेतों पास।
शालीवृक्ष के नीचे प्रभुवर, महावीर ने किया निवास॥
अष्टम 'गुणस्थान' में आ ले, शुक्लध्यान का अवलम्बन।
कर्मों का क्षय करते-करते, करते क्रमशः आरोहन॥
गुणस्थान आया तेहरवां, प्रकट होगया 'केवलज्ञान'।
बड़ा महोत्सव होता इसका, 'चन्दन' ऐसा अटल विधान॥

---

१ जृंभिकाग्राम २. ऋजुकूला

स्वर्ग-लोक से सुरपति आए, करते प्रभुवर का गुणगान।
'महावीर के उपदेशों से, होगा जग का लाभ महान॥

जब तक 'केवलज्ञान' नहीं हो, नहीं देशना देते 'जिन'।
इसीलिये प्रवचन का पावन, होता है यह पहला दिन॥

देवों सिवा नहीं थे कोई, प्रभु की सेवा में हाज़िर।
प्रथम देशना रिक्त गई यों, कहना पड़ता है आख़िर॥

मानव होता तो व्रत लेता, व्रत से सार्थक है उपदेश।
व्रत के बिना देशना खाली, कहते सच्चे सन्त हमेश॥

हुआ विहार वहां से प्रभु का, आए 'निष्पापा' जिनवर।
रचा दूसरा समवसरण अब, दीक्षा लेंगे श्री गणधर॥

दीक्षा की वरनौली

ज्ञातपुत्र श्री महावीर को, प्राप्त होगया 'केवलज्ञान'।
समाचार 'चन्दनबाला' ने, सुना हर्ष भी हुआ महान॥

'शतानीक' से 'मृगावती' से, कहती है 'चन्दनबाला'।
दीक्षा लेने की स्वीकृति दो, फैलाने को उजियाला॥

प्रभु को केवलज्ञान होगया, शिष्य होगए प्रभुवर के।
शिष्या प्रथम बनूंगी मैं अब, प्यारा संयम ले करके॥

राजा-रानी बोले तुम पर, रोक लगाना होगा व्यर्थ ।
'चन्दनबाला' समझो जाती, सभी कार्य के लिए समर्थ ॥
संयम लिये बिना ही तूने, किया सुधार बड़ा भारी ।
बेटी ! इसीलिये हम तेरे, बहुत-बहुत हैं आभारी ॥

दीक्षा लेने की स्वीकृति के- साथ विदाई देते हैं ।
आज्ञा देने वाले देखो, लाभ बहुत ले लेते हैं ॥

'मृगावती' ने कहा-'मुझे भी, संयम तो लेना ही है ।
अभी नहीं ले सकती लेकिन, अभी तुझे देना ही है ॥"

"रखो भावना, आज नहीं तो, कभी सफलता पावोगी ।
धन्य जन्म जब होगा मौसी ! 'वीर'–शरण में जावोगी ॥"

'चन्दनबाला' की असवारी, आई है चौराहों पर ।
दीक्षा लेने को जाती है, सबकी चढ़ी निगाहों पर ॥
समाचार सुनकर आये हैं, 'सेठ धनावह' 'मूला' साथ ।
रथी, रथी की स्त्री, वेश्या, आई करने को साक्षात ॥
दिया सती को सभी प्रजा ने, धर्म पालने का विश्वास ।
'चन्दनबाला' की चर्चा से, गूंजे धरती औ' आकाश ॥

यथाशक्ति व्रत लेती जनता, देती आशीर्वाद भले।
संयम लेने वाली! तेरी, मुक्ति-कामना शीघ्र फले॥

संयम लेकर 'कौशाम्बी' में, दर्शन देने आ जाना।
मीठे प्रभु-वचनामृत प्याले, हमें अवश्य पिला जाना॥
जन्म-भूमि से बढ़ करके ही, 'कौशाम्बी' से रखना प्यार।
'चन्दन' करना जो मरज़ी हो, कहने का तो है अधिकार॥

'वर्द्धमान'-देशना

'समवसरण' में आई बैठी, उचित स्थान पर कर दर्शन।
जग में तीर्थंकर का होता, बहुत बड़ा ही आकर्षण॥
देव-देवियां नर-नारी पशु- पक्षी सुनते हैं वाणी।
समझ लिया करता था सुख से, प्रभु-वाणी को हर प्राणी॥
मौन साधना दीर्घ तपस्या- का जो मैंने पाया फल।
संयम ही जीवन है उसका, 'चन्दन' आता सार निकल॥
क्षण-भंगुर विषयों की माया, छाया जैसी बादल की।
सुख तो नहीं हुआ करती है, सुख की भ्रमणा ही हलकी॥
सांस एक आता है जाता, इसका अगर आंक लो मोल।
'चन्दन' आप आप की, अन्तर आंखें लोगे खोल॥

एक समान अगर है आत्मा, तो फिर नारी है क्यों हीन?
नहीं कभी भी होते देखो, पुरुष मात्र ही सभी प्रवीण ॥

आकृतियों से अलग है, नर-नारी का रूप ।
दोनों में ही बोलती, आत्मा दिव्य स्वरूप ॥

हीन-हीन कह कर इसे, करो न हरगिज़ हीन ।
और अधिक हो जायगी, होगी जो कुछ हीन ॥

आत्मा है यदि हीन यह, तो नारी है हीन ।
ऊंची आत्माएं सदा, देखो नित्य प्रवीन ॥

नर-नारी के भेद को, करिये नज़रंदाज़ ।
आत्म-स्वरूप विलोकिये, आगम की आवाज़ ॥

अन्तरंग या लिंग की, क्या करते पहचान ।
चिदानन्द का कीजिये, 'चन्दन' ऊंचा ज्ञान ॥

अगर नारियों में न शक्ति हो, शक्तिमान क्या होंगे नर ?
अपनी धर्म-देशना में यों, देखो वतलाते 'जिनवर ॥'

कर्मों का क्षय करने वाला, नर हो चाहे हो नारी ।
प्यारा जैनधर्म कहता है, वही मोक्ष का अधिकारी ॥

जगत मात्र के जीव जल रहे, जन्म-मरण की ज्वाला से ।
करो न जीने की कुछ आशा, हालाहल की शाला से ॥

'चन्दनवाला' बोली—मुझको, शरण दीजिये हे प्रभुवर!
आई हूँ दीक्षा लेने को, दुनियां के दुःखों से डर॥

ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ जिनेश्वर, जान रहे थे सारे भाव।
मेरे भाषण-वाणी का किस- प्राणी पर क्या पड़ा प्रभाव॥

'चन्दनबाला' की दीक्षा-विधि, प्रभुवर से सम्पन्न हुई।
सारी अव्रत-आश्रव वाली, क्रियाएं व्यापन्न हुई॥

दीक्षा लेने वाली पहली, नारी है 'चन्दनवाला।'
उपकारी सुखकारी भारी, गुणधारी है 'चन्दनवाला॥'

साध्वी-संघ-नायिका बन कर, चलती है 'चन्दनवाला।'
देखो धर्म-वृद्धि से प्रतिपल, फलती है 'चन्दनवाला॥'

'चन्दनवाला' की दीक्षा से, महिलाओं का मान बढ़ा।
धर्म-कर्म प्रत्येक क्षेत्र में, नारी का सचमुच ज्ञान बढ़ा॥

लगी साध्वियां बनने देखो, एक नहीं छत्तीस हज़ार।
पूज्य आर्याओं का सारा, 'चन्दनवाला' का परिवार॥

महावीर के उपदेशों का, असर हुआ कितना भारी!
आभारी है 'चन्दन' सचमुच, जैन जगत की हर नारी॥

एक अच्छेरा

'महावीर भगवान' एकदा, 'कौशाम्बी' में आए हैं।
साधु-साध्वियां साथ बहुत ही, चार तीर्थ मन भाए हैं॥

'कौशाम्बी' की जनता से- चिरपरिचित थी 'चन्दनबाला।'
आर्याओं के बड़े संघ से, वेष्टित थी 'चन्दनबाला॥'

'साध्वी मृगावती' भी आई, 'चन्दनबाला जी' के साथ।
'कौशाम्बी' के लिये हर्ष की, हुई आज है भारी बात॥

'चन्दनबाला' की आज्ञा से, आई प्रभु के 'समवसरण।'
महासती 'श्री मृगावती जी,' रुकी वहीं पर था कारण॥

मूल रूप में सूर्य-चन्द्र भी, दोनों वहां उपस्थित थे।
दिवा-निशा का भेद न होता, मन भी आश्चर्यान्वित थे॥

ठहरी रही मृगावती भी, हुआ नहीं था इसको भान।
रात्रिकाल में नहीं साध्वियां, रहती हैं सन्तों के स्थान॥
साथी साध्वियां भी भोली थीं, लगा सकीं न यह अनुमान।
रजनी शुरू होगई अब तो, हुआ दिवस का है अवसान॥
सूर्य-चन्द्र जब चले गए तो, सहसा अन्धेरा छाया।
'साध्वी मृगावती' को सारा, ज्ञान तुरत ही हो आया॥
सूर्य अस्त हो जाने पर भी, रही भला क्यों मैं बाहर!
गुरुणी जी क्या समझेंगी, देंगी उपालम्भ डटकर॥

मेरे जैसी साध्वी द्वारा, सचमुच हुआ नियम का भंग।
नियम-भंग से लगा कांपने, उसका अंग-अंग प्रत्यंग ॥
चिंता करती चली आ रही, 'चन्दनवाला जी' के पास।
वन्दन-नमस्कार कर 'चन्दन' खड़ी हो गई हुई उदास ॥

'मृगावती जी' को उलाहना

'चन्दनबाला जी' की मौसी, महासती 'श्री मृगावती।'
बहुत विज्ञ थी, किन्तु आज यह, भारी एक हुई ग़लती ॥
उपालंभ के स्वर में बोली, 'चन्दनबाला जी' इनसे।
आप गलतियां कर देंगी तब, कहा जायगा क्या किससे ?

मृगावतीजी! समझ लिया क्या, नियमों को भी साधारण?
इतनी देर लगाने का क्या, आप बतावेंगी कारण?
जितने भी नियमोपनियम हैं, पालनीय होते सारे।
सभी नियम ही होते हैं सब- महाव्रतों के रखवारे ॥

छोटे नियमों द्वारा होता, बड़े व्रतों का संरक्षण।
बाड़ नहीं होने से ही तो, कर जाते पशु-फल-भक्षण ॥

'मृगावती' ने सूर्य-चन्द्र के, आने का कारण बतलाया।
इसीलिये ही नहीं रात्रि का, ध्यान मुझे कुछ हो पाया ॥

सभी साध्वियां के सम्मुख ही, उपालम्भ यह दिया गया।
लेकिन 'मृगावती जी' द्वारा, उलटा अर्थ न लिया गया॥

समय हुआ जब सोई सारी, सतियां अपने-अपने स्थान।
'मृगावती' का लगा हुआ है, 'चन्दन' आत्मा पर सद्ध्यान॥

घनघाती कर्मों का क्षय

मैंने ये नियमोपनियम सब, किए हुए थे सदा क़बूल।
पश्चात्ताप रही कर मन में, आज हुई क्यों ऐसी भूल॥
'मृगावती' के शुभ ध्यानों से, अध्यवसाय हुए उज्ज्वल।
क्षपक श्रेणी पर चढ़ जाने में, हो जाती है शीघ्र सफल॥
किया उसी क्षण 'मृगावती' ने, घनघातिक कर्मों को नष्ट।
'केवलज्ञान' तथा 'दर्शन' भी, फ़ौरन प्रगट हो गए स्पष्ट॥
द्रव्य, द्रव्यगुण, द्रव्य अवस्था, जानी जाती क्षण भर में।
ज्ञान इन्द्रियातीत यही है, आत्मापेक्ष जगत भर में॥
अप्रतिपाती अविनाशी अवि- चल रहता है साथ हमेश।
चिन्मय हो जाते हैं सारे, जितने भी हैं आत्म-प्रदेश॥
अगर दर्शनावरण उदय हो, निद्रा आया करती है।
मूल, ख़त्म होने पर तरु की, सारी छाया टरती है॥

सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता, आत्मा में है पूर्ण प्रकाश।
दिव्य ज्योति उसको कहते हैं, 'चन्दन' जिनको है विश्वास॥

सांप से बचाया

अन्धेरे में आते देखा, 'मृगावती' ने काला सांप।
दीर्घकाय ज़हरीला भारी, दर्शन से दिल उठता कांप॥
सोई हुई साध्वियां सारी, सांप जा रहा है सरसर।
चला उधर ही 'चन्दनबाला', सुख से सोई हुई जिधर॥
आचार्या का हाथ हटाकर, 'मृगावती' ने बचा दिया।
प्यारी गुरुणी की सेवा का, अवसर पाकर लाभ लिया॥
मगर हाथ के लगते ही यों, उनकी निद्रा भंग हुई।
विघ्न नींद में पड़ने से कुछ, 'चन्दनबाला' तंग हुई॥
संघनायिका ने जगते ही, पूछा—हाथ हटाया क्यों?
असमय नींद उड़ाकर ऐसे, मुझको अभी जगाया क्यों?

नम्र भाव से 'मृगावती' ने, कहा—सांप निकला काला।
गया इधर से इसीलिये कर- मैंने ऊंचा कर डाला॥
क्षमा कीजिये मेरे द्वारा, हुई आपकी निद्रा भंग।
'चन्दनबाला जी' ने सोचा, यह भी एक अनोखा ढंग!!

काले सर्प के स्पर्श से हाथ को बचाते हुए 'महासती मृगावती'

अभी जागती है?

जाग रही हैं आप अभी भी, सोई क्यों न बतावो जी!
उलाहने से दुःख हुआ क्या, आर्या! हमें सुनावो जी!
नींद नहीं लोगी तो होगा, कहीं शरीर कभी अस्वस्थ।
क्योंकि अभी तक साध्वी! हम हैं, छठे गुणठाणे छद्मस्थ॥
अन्धेरे में सांप निहारा, और हटाया मेरा हाथ!
विना प्रकाश हुआ सब कैसे? सारी सुनने लायक वात!!

'मृगावती जी' बोली—मेरा, अन्धेरा सब दूर हुआ।
दिव्य ज्योति के द्वारा अन्दर, उजियाला भरपूर हुआ॥
अगर कृपा हो आचार्या की, शिष्या का होता कल्याण।
उसके लिए सदा हो जाते, गुरुणी! वासर-निशा समान॥
की न उपेक्षा अपराधों की, उपालंभ जो मुझे दिया।
नष्ट हुआ अन्धेरा उस से, सारा सीधा अर्थ लिया॥

'चन्दनवाला जी' बोली—क्या, हुआ आपको कोई ज्ञान?
पूर्ण? अपूर्ण हुआ? उसकी भी, मुझको वतलादो पहचान॥

"अगर आपकी कृपा हो गई, कैसे होगा ज्ञान अपूर्ण।
'मृगावती जी' बोली—मेरा, ज्ञान पांचवां है परिपूर्ण॥"

'चन्दनवाला' जी बोली अब, हुई अवज्ञा करना माफ़।
मुझे नहीं मालूम हुआ था, बनी 'केवली' अब तो आप॥

वन्दन करने लगीं स्वयं अब, शिष्या जी के चरणों में।
केवलियों के छद्मस्थों के, होता जो आचरणों में॥

'चन्दनवाला' को केवलज्ञान

मेरी शिष्या ने मेरे से, पहले पाया 'केवल ज्ञान !
भूल हुई क्या मेरे से जो, किया गया था कल अपमान॥

छोटी-सी ग़लती पर मैंने, उलाहना देकर भारी।
शायद अपने ही हाथों से, मैंने ग़लती कर डारी॥

आचार्या की आत्मा पर से, कर्मों के आवरण हटे।
'केवलज्ञान' तथा 'दर्शन' भी, एक साथ दोनों प्रगटे॥

'चन्दनवाला' 'मृगावती' ने, पाया ऐसे 'केवलज्ञान।'
वीच समय का स्वल्प रहा है, देखो दोनों वनी महान॥

'चन्दनवाला' की शिष्याएं, आर्याएं छत्तीस हज़ार।
चौदह सौ ने केवल पाया, पहुँचीं मोक्षपुरी के द्वार॥

मुक्तात्माओं की अनन्तता

देह त्याग करके आख़िर में, आयु कर्म जब होता नष्ट।
जली हुई रस्सी की माफिक, चार कर्म जो थे अवशिष्ट ॥
मुक्त यहीं पर होती आत्मा, फिर—जाती है सिद्ध-स्थान।
सिद्ध स्थान पर जाकर होती, सदा अवस्था एक समान ॥
छोटे-बड़े नहीं सिद्धों में, ज्योति-ज्योति में मिलती है।
नहीं प्रकाश अलग हो सकता, लौएं कितनी जलती हैं ॥
देह नहीं जब नहीं इन्द्रियां, सूक्ष्म-स्थूल मन नहीं रहा।
केवल आत्मा है 'चन्दन', जाना जैसा साफ़ कहा ॥

पूर्णाहुति और पंचम चरण

'चन्दनबाला'–चरित का, पंचम चरण प्रधान।
करता सारे जगत का, बहुत बड़ा कल्यान ॥

'चन्दनबाला' के चरित, मिलते यहां अनेक।
लेकिन फिर भी देखिये, लिखा गया यह एक ॥

अपनी-अपनी लेखिनी, अपने-अपने भाव।
सब का होता है अलग, अपना-अपना चाव ॥

अपने-अपने स्थान पर, रहता अलग प्रभाव।
सब सरिताओं का यथा, बहता अलग बहाव ॥

बहती सरिताएं बहुत, क्यों हों नाले बन्द ?
छोटा है तो क्या हुआ, 'चन्दन' पूर्ण प्रबंध ॥

'बरनाला' में शोभते, गुरुवर 'पन्नालाल।'
दया धर्म सत्संग से, जनता हुई निहाल ॥

सम्वत् दोहज़ार पर, आए अठावीस।
रचनाओं में आ रही, जागृति विश्वा वीस ॥

कवि की क़लम

सुन्दर 'छन्द लावनी' इस में, दोहे कहीं-कहीं पर हैं।
पद-पद शिक्षा प्रद नद समझो, निकले स्वर बन निर्झर हैं ॥
जीवनियों के द्वारा शिक्षा- देना है लिखने का ध्येय।
सचमुच मुझे अधिक भाती हैं, जो रचनाएं होती गेय ॥
मैं आशा करता हूँ ऐसी, मेरी रचनाएं फैले।
उजले कर डालेंगी जितने, इन्हें मिलेंगे मन मैले ॥

साधु-साध्वियां व्याख्यानों में, वांचेंगी लेकर उत्साह।
राह दिखादेगी दुनिया को, 'चन्दन' की है यही सलाह॥

कथा पुरानी हो जाने से, नहीं पुराने हैं आदर्श।
प्यारे मति-धन जन परखेंगे, करके ज़रा काव्य का स्पर्श॥

पृष्ठ-पंक्तियां अक्षर-अक्षर, मुखर हो रहे हैं 'चन्दन।'
सुनकर, पढ़कर, अपनाकर फिर, करना शत-शत अभिनन्दन॥

बनना हो जो धर्म-पुजारी, बनना हो जो फिर निर्भय।
'चन्दनवाला महसती की, प्यारे पाठक! बोलो जय॥

प्रशस्ति

गीतिका की ध्वनि

युग बदलता है प्रतिक्षण, वक्त बीता जा रहा।
जो गया वह फिर न आता, काल यह बतला रहा॥

किन्तु जो नरदेव इस- भू पर सफल अवतार ले।
दुःख, भय और द्वन्द्व करते- दूर सब संसार के॥

मार्ग दिखलाते निरन्तर, विश्व के कल्याण का।
विश्व-मंगल काम उनका, धर्म है निर्वाण का॥

है अमित उपकार उनका, सकल ही संसार पर।
कर रहे कल्याण हम, उनके वचन-आधार पर॥

ज्ञान की वह विमल ज्योति, 'वीर प्रभु' महावीर थे।
जगत जीवों के वे त्राता, वीर थे, गम्भीर थे॥

हैं विराजे वे हमारे, हृदय के अस्थान में।
बुझ न सकती यशः ज्योति, काल के तूफ़ान में॥

चरम तीर्थङ्कर जिनेश्वर, 'वर्धमान' सु-ज्ञात सुत।
सुबह-सायं काल 'चन्दन', नमन करता भाव युत॥

धर्म-शासन विजयकारी, चल रहा उनका प्रवर।
हैं हुए आचार्य उनके, पट्टधर शुभ ज्योति घर॥

जैन का उज्ज्वल सितारा; विश्व में चमका दिया।
भूले हुए लाखों जनों को, सत्य-पथ दिखला दिया॥

है विशद उज्ज्वल उन्हीं की, ज्ञान त्रिपुटी युक्त यह।
धर्म की आम्नाय सच्ची, क्लेश-द्वेष विमुक्त यह॥

धर्म-ज्योति, धर्म-नेता, 'धर्मदास' आचार्य वर।
आम्नाय 'स्थानक वासी-' को अहं है आप पर॥

दम, दया का, सत्य का, जयनाद जग में था किया।
अन्धकाराछन्न युग में, धर्म-दीप जला दिया॥

संघ उनका यह यशस्वी, सत्य का अनुयायी है।
प्रमुख गुण पूजा यहां, युग-युग से चलती आई है॥

शिष्य उनके थे यशस्वी, 'योगराज' महा मुनि।
आचार्यवर सच्चे तपस्वी, थे तपस्वी सद्गुणी॥

सप्त व्यसनों का कराया, त्याग जन-जन को बहुत।
धर्म का उद्योत कर सब- को दिखाया सत्य-पथ ॥
उनके विमल चरित्र की थी, छाप जन-जन पर अटल।
जो शरण में आ गया बस, कर गया जीवन सफल ॥

पूज्य 'हज़ारीमल्ल' मुनिवर, शिष्य उनके थे कमाल।
थे धनी छत्तीस गुण के, थे आचार्य बे-मिसाल ॥
मर्म बतला दान का, और- धर्म दया मय का प्रखर।
ज्ञान-नौका में बिठा, तारे हज़ारों अज्ञ नर ॥

'लालचन्द जी' शिष्य उनके, सरल अति गुणवान थे।
क्षमा के अवतार थे वे, सत्य की इक शान थे ॥
प्राप्त जन-जन की श्रद्धा कर, न अहं का नाम था।
शांत मुख, औ' मधुर वाणी- बोलना ही काम था ॥

पूज्य 'गंगाराम जी' थे, शिष्य उनके ज्ञानवान।
धर्म का डंका बजाया, थी निराली शान-बान ॥
तत्त्वज्ञानी ज्ञान की- गंगा बहाई जगत में।
चरण कमलों में शरण ले, शान्ति पाई जगत ने ॥

जैन-अम्बर में चमकते, जो सितारे एक थे।
पूज्य 'जीवनराम जी', उज्ज्वल विमल विवेक थे॥
शिष्य 'गंगाराम जी' के, गंग सम पावन हृदय।
ज्ञान की गरिमा ग़जब थी ! था अजब उनका विनय॥

घूम बांगर, दिल्ली, बागड़, मारवाड़, मेवाड़ में।
कष्ट भारी थे सहे- नव क्षेत्र के प्रचार में॥
शान्त आत्मा, परम त्यागी, लौ जली थी ज्ञान की।
कामना करते सदा स्व- विश्व के कल्याण की॥

शिष्य उनके 'भक्तराम जी', भक्त प्रभु के थे अटल।
भक्ति-रस को बांट भक्तों- का किया जीवन सफल॥
मधुर भाषी अल्प भाषी, और भक्ति लीन थे।
सिंह सम निर्भय विचरते, धर्म प्रचार प्रवीण थे॥

शिष्य उनके परम तेजस्वी, मनस्वी महा गुणी।
आचार्य 'श्रीचन्द जी' हुए, युग की अमोलक इक मणि॥
धर्म का उद्योत करते, हरते तम अज्ञान का।
क्या करूं वर्णन भला उस- जैन जग के भानु का॥
दया धर्म का झण्डा जगत में, आपने लहरा दिया।
सत्य - अहिंसा - शक्ति से; हिंसा का दिल दहला दिया॥

स्नेह उनके नयन में था, और मीठे थे वचन।
था खिला मस्तक उन्हीं का, ज्यों महकता हो चमन॥

'नवतत्त्व' 'सप्तनय' पुनि, सप्तभंग 'षड्द्रव्य' का'।
जब कभी करते विवेचन, तो सभी को श्रव्य था॥

गूढ़ तत्व-ज्ञान को भी, सरल सुबोध सु-स्पष्ट कर।
सरस शैली से बनाते, श्रोतृजन का कष्ट हर॥

थे खिंचे आते सहस्रों, मनुज भेद-विभेद हर।
झूम उठते ज्ञान सुन कर, हृदय के सब खेद हर॥

गौर तन, तेजस्वी लोचन, औ चमकता भाल था।
ब्रह्म-व्रत के तेज से- संदीप्त भाल विशाल था॥

मन सरल औ शान्त था, प्रसन्न रहते थे वे नित।
इसीलिये मुनिवृन्द में, सम्मान उनका था अमित॥

अन्तःवासी पूज्य श्री के, शांति-सागर धर्म-घर।
श्री 'श्री पन्नालाल जी'- महाराज गुरु मेरे प्रवर॥

आगमों में जो बताए, घोर तप औ ध्यान जप।
शान्त मन से वे तपस्याएं, मेरे गुरुवर ने तप॥

कर्म का जंजाल मेटा, शुद्ध आत्म स्वर्ण सम।
निस्पृही गुरुदेव को नित, वन्दना करते हैं हम॥

भक्ति युत सत्प्रेम मुझको, आज जनता दे रही।
और फिर दो शब्द सुनकर, ज्ञान भी कुछ ले रही॥
है उन्हीं की ही कृपा, वरदान जीवन में मिला।
भाग्य का 'चन्दनमुनि' के, पुण्य नित रहता खिला॥
भव्य जन गण के हृदय में, शील शम जो दे जगा।
है महा आनन्द दाता, 'चन्दना' की यह कथा॥
रंग शब्दों का मिला कर, कलम मैंने फेर दी।
कह न सकता चित्र कैसा, यह वना मेरे सुधी!

ढंग कविता का नहीं कुछ, ज्ञान पिंगल का नहीं।
इसलिये अय पाठकों! लख दोप हंसना न कहीं॥
किन्तु इसमें बात जो, अच्छी तुम्हें कोई लगे।
स्वीकार कर लेना उसे ही, हंस ज्यों मुक्ता चुगे॥